ISSN : 0373-1200

विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशित हिन्दी की प्रथम विज्ञान पत्रिका

मूल्य : 9.00 रु०

औद्योगिक प्रदूषण

वन्य जीवन संरक्षण

जल संरक्षण

सियाचिन में प्रदूषण

विज्ञान परिषद् प्रयाग

सी. एस. आई. आर. तथा डी. बी. टी. नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

विज्ञान

परिषद् की स्थापना : 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन : अप्रैल 1915
वर्ष : 89 अंक : 3
जून 2003

मूल्य
दसवार्षिक : 1,000 रुपये
त्रिवार्षिक : 300 रुपये
वार्षिक : 100 रुपये
यह प्रति : 9.00 रुपये

सभापति
डॉ० (श्रीमती) मंजु शर्मा

सम्पादक, मुद्रक एवं प्रकाशक
डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान परिषद् प्रयाग के लिए
नागरी प्रेस
91/186, अलोपी बाग, इलाहाबाद में मुद्रित
फोन : 2502935, 2500068

आन्तरिक सज्जा व टाइप सेटिंग
शादाब खालिद
79/65, सब्ज़ी मण्डी, इलाहाबाद, फोन : 2651264

आवरण
चन्द्रा आर्ट्स
तालाब नवलराय, इलाहाबाद, फोन : 2558001

सम्पर्क
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211002
फोन : 2460001 ई–मेल : vigyan1@sancharnet.in
वेबसाइट : www.webvigyan.com

विषय सूची

गंगाजल, एक वैज्ञानिक आचमन

रामचन्द्र मिश्र

सुधातः स्वादीयः सलिलभरमातृप्ति पिबतां।
जननामानंदः परिहसति निर्वाणपदवीम्।।

जी हाँ, 'श्रीगंगासहस्रनामस्तोत्रम', 'श्रीगंगालहरी', 'गंगा अष्टोत्तरशत नामावलि' आदि प्राचीन रचनाओं द्वारा गंगाजल के आचमन को जिस गौरव के साथ महिमामंडित किया गया है, उससे यह परिलक्षित होता है कि गंगा एक पावन तीर्थ है, न कि श्रेष्ठ भौगोलिक आर्थिक महत्व की नदी मात्र। वस्तुतः सुधामयी गंगा की अमर गाथा शिखर से घाटी तक प्रवाहित होती रही है। कवि रसखान के शब्दों में गंगाजल का चमत्कार यों है :

ए री सुधामयी भागीरथी,
सब पथ्य कुपथ्य बनें तुम पोसें।
आक धतूरो चबात फिरैं,
विष खात फिरैं सब तोरे भरोसे।।

बड़े दुख की बात है कि विषाक्त प्रदूषण को निष्क्रिय करने की क्षमता से युक्त गंगाजल इतना पंकित–प्रदूषित, अरुचिकर और हानिकर हो गया है कि उसका आचमन करने में भय का अनुभव होता है। तो आइए, गंगाजल का एक वैज्ञानिक आचमन हो जाए।

पूजा प्रदूषण

गंगाकार्य योजना, गंगासफाई योजना, गंगाजल गुणवत्ता अनुवीक्षण योजना आदि कार्यक्रम चलाने के बावजूद यह ज्ञात होता है कि नगरीय मलजल एवं

औद्योगिक बहिःस्राव के उपचार द्वारा गंगाजल की गुणवत्ता में सुधार अवश्य आया है किंतु प्रदूषण के नए स्रोत जुड़े हैं जिनकी वजह से गंगाजल में रासायनिक, जैविक एवं रोगकारक प्रदूषण–भार बढ़त पर है। ऐसा क्यों ?

धार्मिक मूल्यों में मनुष्य की आस्था भले ही अवनत हुई हो, बढ़ती हुई धनाढ्यता तथा शांति की खोज में पूजा–पाठ, आरती–कीर्तन, स्नान मेला अथवा सांस्कृतिक गतिविधियों में उछाल अवश्य आया है। इन सबमें जनता की भागीदारी काफी बढ़ी है। परोक्ष–अपरोक्ष रूप से गंगाजल प्रदूषण में उपरोक्त गतिविधियों की

प्रभावी भूमिका है। अस्थि विसर्जन, अधजली लाशों और बिना जलाई गई लाशों का गंगाजल में विसर्जन, बढ़ती हुई आबादी और धनाढ्यता के अनुपात में बढ़ा है। वस्तुतः गंगाजल में निर्माल्य सामग्री, पत्ते, बीज, फूल, फल, विषाक्त वनस्पतीय चढ़ावे आदि की मात्रा बेशुमार बढ़ी है। एक और कुंभ मेला आसन्न है जिसके कारण गंगाजल प्रदूषण में संभावित वृद्धि को लेकर चिंता हुई है। एक ओर जब हर गंगे की ध्वनि बुलंद होती है तो दूसरी ओर प्रदूषण की जय होकर रहती है। पूजा पाठ की वैचारिकी दूषित हुई है जिसका गंगाजल के प्रदूषण पर असर हो कर रहता है। यहाँ अफसोस के साथ कहना पड़ रहा है कि,

नालों की आत्मकथा हर नदी,
कैसे करें गंगाजल आचमन ?
प्रदूषण की सवारी हर घाट लदी
खैर मनाए ये इक्कीसवीं सदी।

वैज्ञानिक आचमन

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान, गंगासफाई संगठनों आदि द्वारा किये गये गंगाजल परीक्षण चौंका देने वाले तथ्य प्रस्तुत करते हैं। मसलन रोगकारक ई–कोलीफार्म जीवाणुओं की मात्रा (जो मूलतः जैविक अपशिष्ट के कारण बढ़ती है) में इतनी वृद्धि हुई है कि गंगाजल अब आचमन योग्य भी नहीं रहा। स्वच्छ जल, सामान्यतः स्वीकार्य जल और अति दूषित जल में इस जीवाणु की प्रति मिलीग्राम संख्या क्रमशः 50,500 और 10,000 से 15,000 तक निर्दिष्ट की गई है, किंतु कई स्थानों और विशेष अवसरों पर गंगाजल में यह संख्या ढाई लाख से सवा तीन लाख तक पाई गई है। यानी जब हम पाँच दस मिलीग्राम गंगाजल का आचमन करते हैं तो साथ में तीस बत्तीस लाख जीवाणु पेट में दाखिल हो जाते हैं। अन्य प्रदूषक घटक भी इसी क्रम में गंगाजल को अगंगाजल बनाने में हावी पाए गए हैं। उदाहरणतः जैविक आक्सीजन माँग या बी.ओ.डी. 12 से 20 पी.पी. एम. तक बढ़ा है, नाइट्रोजन आक्साइड 250–300, घुलित आक्सीजन 2 मिलीग्राम प्रति लीटर से कम और कुल घुलित ठोस या टी.डी.एस. 3000 मिलीग्राम तक पाए गए हैं। अन्य सभी प्रदूषक घटक भी इसी क्रम में बढ़े हैं।

सारांशतः गंगाजल में बढ़ते चढ़ते जीवाणुओं, विषाणुओं एवं रोगाणुओं की घुसपैठ के चलते इस जल के पीने से जलजन्य रोगों आंत्रशोथ, यकृतशोथ, हैजा, अमीबा से पेचिस आदि की संभावना में निश्चित रूप से वृद्धि हुई है।

प्राचीन ग्रंथों में गंगाजल को भले ही पारदर्शक, रुचिकर, पाचक एवं बुद्धिवर्धक बताया गया है किंतु गंगा का वह अतीत अब पीछे छूट गया है। गंगाभक्तों ने गंगाजल को मैला और अपवित्र कर डाला है, गंगा और गंगा के प्रदेश दोनों को भारी क्षति पहुँचाई है। कहने को तो हम भारतीय नीम, तुलसी, पीपल, वट, वायु, जल, नदी, सूर्य, चंद्र, नवग्रह आदि की पूजा करते हैं और इस प्रकार इनकी शुद्धता बनाए रखना हमारे व्यवहार और आदतों में रचा–बसा होना चाहिए, किंतु वर्तमान सत्य इसके विपरीत ही है।

स्वतः शुद्धि

यह धारणा प्राचीन समय से चली आ रही है कि गंगाजल में स्वयं शुद्धीकरण की क्षमता है। यह धारणा कितनी सच है और कितनी मिथक, विचारणीय विषय है। गंगा की तेज तर्रार धाराओं से आक्सीजन का निरंतर मेल होता रहा है और इस वातन अभिक्रिया द्वारा जल शुद्ध होता है। जिन स्थानों पर जल की धाराओं का वेग घट जाता है वहाँ शुद्धीकरण की क्रिया शिथिल पड़ जाती है। प्रदूषकों की अधिकाधिक मात्रा होने पर गंगाजल का ताप बढ़ता है, बायोकेमिकल आक्सीजन की आवश्यकता घटती है, विलेय आक्सीजन घटती है और गंगाजल में पाए जाने वाले बैक्टिरियोफेज की मात्रा घटती है। गंगाजल की स्वयं शुद्धि की प्रक्रिया वस्तुतः हानिकारक और सड़ांध पैदा करने वाले कीटाणुओं को बैक्टिरियोफेज द्वारा खा जाने के कारण संपन्न होती है। प्रदूषकों की वर्तमान भारी मात्रा के मुकाबले

बैक्टिरियोफेज द्वारा गंगाजल को शुद्ध करने की क्षमता अब अत्यल्प ही शेष है। जल में स्थित, क्रोम भी कीटाणुओं और रोगाणुओं का उपचार कर गंगाजल को शुद्ध करने में कुछ ही अंश तक सहायक हैं, क्योंकि अतिदूषण के प्रकोप से क्रोम लापता होने लगता है।

गंगोत्री से गंगासागर या शिखर से सागर तक 2525 किलोमीटर की लंबी यात्रा के दौरान गंगाजल में ऐसे कई खनिज द्रव्य समाहित होते हैं जो विषाक्तता अवरोधी या एंटीसेप्टिक प्रभाव वाले होते हैं। संप्रति ऐसे खनिजों का परिमाण और सक्रियता गंगाजल की सफाई में नाममात्र की भूमिका अदा करते हैं। गंगाजल में फिलहाल जैविक आक्सीजन माँग चिंताजनक स्तर पर यानी रोजाना साढ़े सात लाख किलोग्राम से अधिक है जिसमें तीन दोषी राज्यों– उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिमी बंगाल की भागीदारी क्रमशः 52, 10 और 38 फीसदी है। इस प्रकार गंगाजल के शुद्धीकरण हेतु किए जा रहे कुछ प्रयासों और गंगाजल की स्वयं शुद्धीकरण की सीमित क्षमता को देखते हुए गंगा के पुनरुद्धार हेतु एक और भगीरथ प्रयास करने की आवश्यकता महसूस की जा रही है। ऐसा प्रयास क्रांतिक वैचारिकी द्वारा संभव हो सकता है।

क्रांतिक उपाय

प्रजातंत्र में अपार जनशक्ति होती है जिसके द्वारा असंभव भी संभव हो सकता है। दृढ़ जनसंकल्प द्वारा गंगाशुद्धि का महान लक्ष्य अब भी पूरा किया जा सकता है। गंगा आखिरकार उन सभी की है जो गंगा के देश के वासी हैं और गंगा से पोषण, सुरक्षा और प्रेरणा ग्रहण करते हैं। संविधान में अंतःस्थापित नागरिक कर्त्तव्यों के अनुसार नदी, झील और वनों की रक्षा करना हर नागरिक का कर्तव्य है जिसके लिए व्यक्तिगत या संगठित रूप से कार्रवाई करना अनिवार्य आवश्यकता है। विचारणीय है कि देश की प्रमुख नदियों को जोड़ने की विराट योजना विचाराधीन है। गंगा की शुद्धि किए बगैर तथा अन्य नदियों को साफ करने से पहले नदियों को जोड़ना सर्वत्र प्रदूषण और जलजन्य बीमारियाँ फैलाने जैसा अवांछनीय कार्य होगा।

मलजल एवं औद्योगिक बहिःस्राव के उपचार पर प्रभावी ऐंड लगाना, अस्थि–विसर्जन और अधजली लाशों को गंगाजल में प्रवाहित करने पर कानूनी रोक लगाना और विषाक्त प्रदूषकों की धरपकड़ करना अत्यावश्यक है। फिर भी जनसहयोग के बिना ये सब प्रयास आधे अधूरे रह जाएँगे।

गंगाजल को शुद्ध करने के क्रांतिक उपाय गंगा के प्रति अंधभक्ति को रोकने में निहित है जिसकी आड़ में प्रदूषण 'बूँद बूँद से सागर' जैसा विराट बन जाता है। धर्म और विज्ञान दोनों ही सत्य का संधान करते हैं। धार्मिक मूल्यों द्वारा विज्ञान को सही दिशा मिलती है। आध्यात्म और विज्ञान में कोई द्वंद्व नहीं है। क्या धार्मिक अनुष्ठान वैज्ञानिक सत्य की अवमानना करते हुए फलदायक रूप में संपन्न किए जा सकते हैं ? ज्ञान विज्ञान के अभ्युदय के इस चरण में हमें अपने धार्मिक अनुष्ठानों या पूजा पाठ की विधियों में आवश्यक सुधार लाना अपरिहार्य है। देवी भागवत में कहा गया है कि,

गंगे गंगेति यो ब्रूयात् योजनानाम् शतैरपि।
सर्वपाप विनिर्मुक्तो विष्णुलोकम् स गच्छति।।

गंगा की पूजा यदि दूर से भी की जा सकती है तो उसमें निर्माल्य सामग्री उड़ेलने की क्या आवश्यकता है ? 'नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्टीवनम् समुत्सृजेत। अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहित वा विषाणि वा।' यानी जल में प्रदूषक पदार्थ छोड़ना वर्जित है, पूजाविरुद्ध है, भले ही वह निर्माल्य सामग्री ही क्यों न हो। पत्र, पुष्प आदि निर्माल्य बगैर पूजा करने की विधि पर राष्ट्रीय चर्चा छेड़ी जानी चाहिए। गंगाजल को स्वच्छ रख कर ही हम कह सकते हैं– हर गंगे।

2/203, देवदर्शन
डोंगरीपाड़ा, घोरबंदर मार्ग
ठाणे

हिमालय में भी फैल रहा है प्रदूषण

डॉ० प्रदीप कुमार मुखर्जी

आज पर्यटन एक उद्योग का रूप ले चुका है। लोग ऐतिहासिक व धार्मिक स्थलों तथा मनोरंजन के अन्य पर्यटन स्थलों पर जाने के लिए यात्राएँ करते हैं। पर साहसिक गतिविधियों में रुचि रखने वाले लोग इन स्थलों पर जाने की बजाय दुर्गम स्थलों, पर्वत शिखरों व वनों की तरफ का रुख करते हैं। ऊँची-ऊँची बर्फीली हिमालय की चोटियाँ, वन्य जीव जंतुओं से भरे वन तथा तेज बहाव वाली नदियाँ हमारे देश में साहसिक अभियानों में रुचि रखने वालों के लिए सचमुच आदर्श स्थल प्रस्तुत करती हैं। पर्वतारोहण, ट्रेकिंग, स्कीइंग आदि के लिए तो हमारा देश स्वर्गतुल्य है ही।
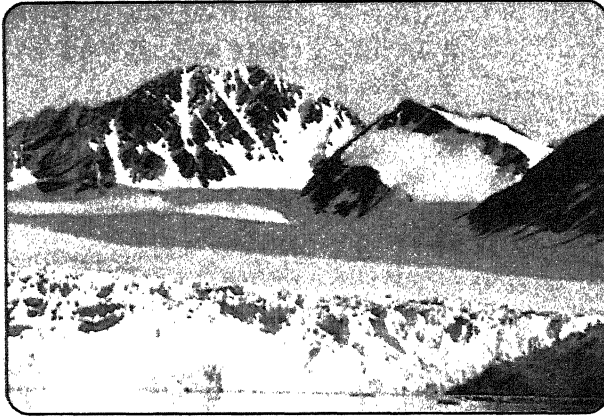
लेकिन इन सब गतिविधियों ने प्रदूषण को भयंकर बढ़ावा दिया है। आलम यह है कि वन,, दुर्गम स्थल और पर्वत आदि भी प्रदूषण की चपेट में आने से नहीं बच पाए हैं।

पर्वतारोहण तथा ट्रेकिंग व स्कीइंग में रुचि रखने वाले अपने साथ सभी प्रकार का साजो-सामान तथा दवाइयाँ आदि लेकर चलते हैं। इनमें साधारण पेटदर्द से लेकर महिलाओं के मासिक धर्म को प्रभावित करने वाली दवाएँ भी शामिल होती हैं। इन दवाइयों में कुछ जहरीली भी होती हैं। पानी में घुलकर ये दवाइयाँ जल को उसके उद्‌गम स्थल पर ही प्रदूषित कर देती हैं। यही नहीं, नमक की खोज में वन्य जीव जंतु इन दवाइयों को चाट कर विभिन्न रोगों का शिकार हो जाते हैं तथा उनकी प्रजनन शक्ति पर भी इनका कुप्रभाव पड़ता है।

दवाइयों के अलावा प्लास्टिक के साजो-सामान, खाली डिब्बे यहाँ तक कि गैस सिलेंडर तक लोग कुछ तो लापरवाही और कुछ अपनी परेशानी व मेहनत बचाने के लिए अपने पीछे छोड़ जाते हैं। इससे कचरे व अपशिष्ट की मात्रा में बढ़ोतरी होती है।

खाना बनाने के लिए वृक्षों के नीचे यात्री चूल्हा जलाते हैं। मगर जाते वक्त उस आग को बुझाना वे भूल जाते हैं। नतीजतन अनमोल वृक्ष उनकी लापरवाही का शिकार होकर जल कर स्वाहा हो जाते हैं।

यात्रियों और पर्यटकों की विविध गतिविधियों से जैव विविधता भी प्रभावित होती है। ब्रह्म कमल एक दुर्लभ पुष्प है जो काफी ऊँचाई पर पाया जाता है। इसे आई.यू.पी.एच. की रेडडेटा बुक में शामिल किया जाता

है। धार्मिक महत्व के कारण इस पुष्प को पूजा में चढ़ाया जाता है। लेकिन पूजा में अर्पित करने के लिए यात्री इसे जड़ समेत उखाड़ देते हैं जिससे कि वह दोबारा उगने के काबिल नहीं रहता है। इस तरह यह दुर्लभ पुष्प दुर्दशा को प्राप्त होता है।

यही नहीं, बल्कि ऊँचाई पर पाई जाने वाली कई दुर्लभ जड़ी–बूटियों पर भी मानव क्रियाकलापों से कहर टूटता है। खासकर गाँवों के लोग धन कमाने के लालच में इन जड़ी–बूटियों को इकट्ठा करते हैं। पर जानकारी व शिक्षा के अभाव में वे इन जड़ी–बूटियों को एक ही स्थान से निकाल लेते हैं। फलतः ये जड़ी–बूटियाँ उस स्थल पर दोबारा नहीं उग पातीं। इनमें से कई जड़ियाँ तो बहुत से दुर्लभ वन्य प्राणियों के आहार का कार्य करती हैं। इस तरह लोगों की अज्ञानता व स्वार्थलोलुपता के कारण पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ जाता है और पर्यावरण पर भी चोट पड़ती है।

पर्वतों और वनों के अलावा अब तो सियाचीन जैसे दुर्गम स्थलों में भी पर्यावरण प्रदूषण की समस्या जोर पकड़ती जा रही है। करीब छह किलोमीटर (20,000 फुट) की बर्फीली ऊँचाई पर स्थित 76 किलोमीटर लम्बे सियाचीन ग्लेशियर में अपशिष्टों से उत्पन्न प्रदूषण दिनोंदिन चिंता का विषय बनता जा रहा है।

मानव शरीर तथा भोजन आदि के अपशिष्टों के अलावा इस अपशिष्ट में पैकिंग आदि के काम में आने वाली प्लास्टिक आदि सामग्री भी शामिल है। अनुमान है कि एक दिन में औसतन 1 किलोग्राम प्रति व्यक्ति के हिसाब से सियाचीन में अपशिष्ट उत्पन्न होता है। सियाचीन ग्लेशियर के उत्तरी, मध्य तथा दक्षिणी क्षेत्रों में भारतीय फौज के 1000–1500 सैनिक सीमा की चौकसी के लिए हमेशा तैनात रहते हैं। इस तरह प्रतिदिन 1000–1500 किलोग्राम के करीब अपशिष्ट वहाँ रोजाना उत्पन्न होता है।

सीमा पार से होने वाली गोलाबारी के कारण इकट्ठा हुए कारतूसों के खोल व कवच तथा गोला–बारूद व हथगोलों आदि के अवशेष भी सियाचीन में कचरे व मलबे के ढेर को बढ़ावा देते हैं। गौरतलब है कि 1998 में कारगिल युद्ध के दौरान पाकिस्तानी सेना द्वारा छोटे आग्नेयास्त्रों से करीब 2,30,000 गोलियाँ चलाई गईं तथा 43,000 के करीब गोले दागे गए थे। इन कारतूसों के खोलों तथा गोलों में बाह्य कवचों आदि से ढेर का ढेर मलवा भारतीय सीमा में इकट्ठा हो गया था। आए दिन होने वाली गोलाबारी इस मलबे के परिमाण को लगातार बढ़ा ही रही है।

यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि सियाचीन ग्लेशियर में तापमान – 40 डिग्री सेल्सियस तक हो जाता है। ऐसे में वहाँ अपशिष्ट क्षय को प्राप्त न हो सकने के कारण यूँ ही पड़ा रह जाता है। हालाँकि मिट्टी के तेल से चलने वाले भस्मकों का इस्तेमाल वहाँ कुछ अपशिष्टों के भस्मीकरण के लिए किया जाता है पर अधिकतर अपशिष्ट ही विघटित न होकर ज्यों का त्यों पड़ा रह जाता है।

मेजर एच.पी.एस. आहलूवालिया, जिन्हें एवरेस्ट की चोटी चढ़ने का गौरव प्राप्त है तथा लद्दाख क्षेत्र पर जिन्होंने अनेक पुस्तकें भी लिखी हैं उनका कहना है कि सियाचीन ग्लेशियर विश्व में ऐसा ग्लेशियर है जहाँ भारत तथा पाकिस्तान के फौजी पिछले करीब तीन दशकों से एक दूसरे के खिलाफ डँटे हैं। करीब–करीब रोजाना ही दोनों फौजों के बीच गोलियों का आदान–प्रदान होता रहता है।

कारतूस, बमों तथा गोलों के खोलों और कवचों द्वारा मलबे का ढेर तो बढ़ता ही है लेकिन आहलूवालिया की चिंता का कारण कुछ और भी है। वह कहते हैं, "दोनों राष्ट्रों की सरकारें यह बात भूल जाती हैं कि 76 किलोमीटर लम्बी हिमनद द्वारा ही नबरा नदी को जल पहुँचता है। यही नहीं, अंततः सिंधु (इंडस) नदी से जाकर मिलती है। अब यह दोनों राष्ट्रों के हित में नहीं है कि उन तक पहुँचने वाला जल उद्गम स्थल पर ही प्रदूषित हो जाए।"

जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ एनवायरनमेंटल साइसेंज से जुड़े पर्यावरण विज्ञानी सैयद इकबाल हसनैन इस बारे में अपनी चिंता जाहिर करते हुए कहते हैं, "मुझे डर है कि माउंट एवरेस्ट जैसी

हिमालय की अन्य चोटियों की तरह ही एक दिन सियाचीन भी मलवे के एक विशाल ढेर के रूप में तब्दील होकर रह जाएगा।"

मलबे के ढेर से पर्यावरण तो प्रदूषित होता ही है लेकिन हसनैन की चिंता के दायरे में एक और पहलू भी है। इसी चिंता को प्रकट करते हुए वह कहते हैं, "अगर भारत और पाकिस्तान के बीच इसी तरह सीमा को लेकर तनावपूर्ण स्थिति बनी रही तो यह दिन दूर नहीं जब दोनों फौजें पिघले हुए ग्लेशियर के ऊपर एक दूसरे से लोहा लेंगी। व्यापक सामरिक गतिविधियों के अलावा खाना पकाने के लिए प्रयुक्त होने वाले चूल्हों, हेलीपैडों के निर्माण तथा अनवरत रूप से हेलीकाप्टरों की आवाजाही से इस ग्लेशियर के परिवेश पर अपने खतरनाक निशान छोड़े हैं। इसका असर ग्लेशियर की सूक्ष्मजलवायु (माइक्रोक्लाइमेट) तथा इसकी गतिकी (डाइनामिक्स) पर पड़ा है। जिस तेजी के साथ यह ग्लेशियर पिघल रहा है उसे देखते हुए लगता है कि दस–बारह साल बाद वहाँ बर्फ की जगह बस कूड़े और मलबे का ढेर ही चारों तरफ बिखरा दिखाई पड़ेगा।"

पर्यावरणविदों का कहना है कि हिमनद खास तौर पर मानव गतिविधियों द्वारा उत्पन्न परिवर्तनों के प्रति अति संवेदनशील होते हैं। इस संबंध में चेतावनी देते हुए वे कहते हैं कि आए दिन बढ़ती मानव गतिविधियों के कारण गंगोत्री समेत विभिन्न हिमनदों की सन् 2003 तक पिघलने की संघातक स्थिति उत्पन्न हो जाएगी जिससे जल संकट और गहराएगा।

सियाचीन में कूड़े–कचरे के मलवे के बढ़ते ढेर ने पर्यावरणविदों के माथों पर न केवल चिंता की लकीरें खींची हैं बल्कि उसे ठिकाने लगाने के उपाय ढूँढने के वैज्ञानिक प्रयासों में भी वे लगे हैं। रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डी.आर.डी.ओ.) के वैज्ञानिकों ने विगत में ऐसे बायोडाइजेस्टरों का विकास किया था जो कचरे को ठिकाने लगा सकें। लेकिन इन बायोडाइजेस्टों में प्रयुक्त होने वाले जीवाणु मात्र –17 डिग्री सेल्सियस तक का तापमान ही सह सकने में सक्षम थे जबकि सियाचीन में इकट्ठा हुए कचरे और मलवे के ढेर को ठिकाने लगाने के लिए कम से कम –40 डिग्री सेल्सियस का तापमान झेल सकने वाले जीवाणुओं की आवश्यकता है।

गौरतलब है कि अमेरिका के अलास्का क्षेत्र में भी सियाचीन जैसा ही निम्नतापीय परिवेश मौजूद है। ऐसे में सियाचीन में इकट्ठा हुए कचरे को ठिकाने लगाने के लिए निम्न तापसह जीवाणुओं पर आधारित टेक्नोलॉजी को अमेरिका से आयात करने के बारे में भारत विचार कर रहा है।

अमेरिका से उल्लिखित टेक्नोलॉजी आयात करने के अलावा भारत सरकार की इस दिशा में और भी महत्वाकांक्षी योजनाएँ हैं। ईंधन को पाइपलाइनों द्वारा फौजी ठिकानों व चौकियों तक पहुँचाने तथा सौर टेक्नोलॉजी आधारित तापकों के प्रयोग को बढ़ावा देने की योजनाएँ विचाराधीन हैं। इससे गैस सिलेंडरों को लाने ले जाने की समस्या से निजात मिलेगी। इसके अलावा खाद्य वस्तुओं की पैकिंग आदि के लिए हल्के तथा रासायनिक रूप से विघटनीय पदार्थों का विकास करने के बारे में भी सोचा जा रहा है ताकि कचरा व मलबा आदि तो कम से कम उत्पन्न हो ही उन्हें ठिकाने लगाने में भी न्यूनतम समस्या आए। धात्विक अपशिष्टों को लेसर टेक्नोलॉजी द्वारा भस्म किए जाने की योजना भी विचारणीय है।

यह तय है कि सियाचीन को लेकर कुछ न कुछ तो करना ही होगा। नहीं तो 'गुलाबों की जगह' (जो सियाचीन का शाब्दिक अर्थ है) का खिताब पाने वाला यह क्षेत्र एक दिन कूड़े–कचरे और मलबे का ढेर बन कर रह जाएगा। इससे पारिस्थितिक असंतुलन के साथ–साथ परिवेश के बिगड़ जाने की भी आशंका है जो प्रदूषण के साथ–साथ जल संकट को भी बढ़ावा देने में अपना योगदान देगा।

43, देशबन्धु सोसाइटी
15, पटपड़गंज
दिल्ली–110092

प्लास्टिक कचरे का निबटान :
एक जटिल समस्या

ज्योति भाई

अपनी विविध विशेषताओं के कारण प्लास्टिक आधुनिक युग का अत्यन्त महत्वपूर्ण पदार्थ बन गया है। टिकाऊपन, मनभावन रंगों में उपलब्धता और विविध आकार–प्रकारों में मिलने के कारण प्लास्टिक का प्रयोग आज जीवन के हर क्षेत्र में हो रहा है। बाजार में खरीददारी के लिए उपयोगी रंग बिरंगे बैग से लेकर रसोईघर के बर्तन, कृषि के उपकरण, परिवहन वाहन, जल वितरण पाइप, भवन, रक्षा उपकरण एवं इलेक्ट्रानिक्स सहित अनेक क्षेत्रों में आज प्लास्टिक का बोलबाला है। यही नहीं, वैज्ञानिकों ने मनुष्य का जो कृत्रिम हृदय बनाया है, वह भी प्लास्टिक से ही बनाया है।

तमाम खूबियों वाला यही प्लास्टिक जब उपयोग के बाद फेंक दिया जाता है तो यह अन्य कूड़ों की तरह आसानी से नष्ट नहीं होता। एक लम्बे समय तक समाप्त न होने के कारण यह लगातार एकत्र होता जाता है और अनेक समस्याओं को जन्म देता है। जिन देशों में जितना ही अधिक प्लास्टिक का उपयोग होता है, वहाँ यह समस्या उतनी ही जटिल है। चिन्ता की बात तो यह है कि अभी प्लास्टिक का उपयोग लगातार बढ़ता ही जा रहा है, जबकि पिछले वर्षों जो प्लास्टिक कूड़ा फेंका गया, वह ज्यों का त्यों धरती पर यत्र–तत्र बिखरा प्रदूषण फैला रहा है।
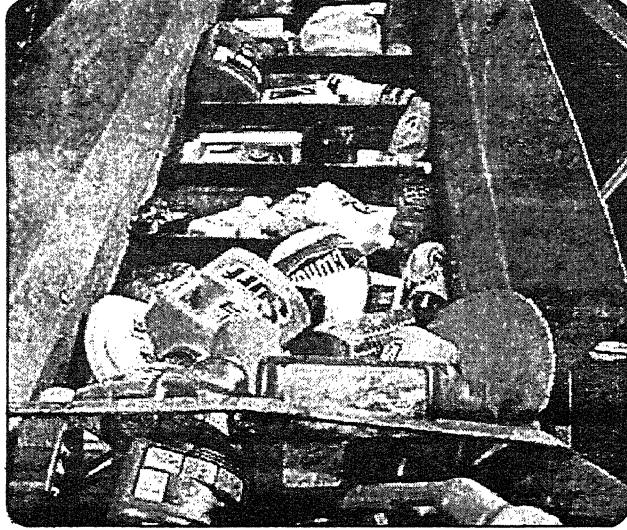
भारत में अभी भी प्लास्टिक का उपयोग विकसित देशों की अपेक्षा काफी कम है, लेकिन इसका प्रयोग तेजी से बढ़ रहा है। 2000–2001 तक प्लास्टिक की खपत देश में 35 लाख टन तक पहुँच गई थी जिसमें 10 लाख टन प्लास्टिक पुनर्चक्रण द्वारा प्राप्त हुआ था। देश में प्लास्टिक का उपयोग यदि इसी तरह लगातार बढ़ता गया तो सन् 2010 तक भारत प्लास्टिक उपयोग में दुनिया में तीसरे स्थान पर पहुँच जायेगा।

कार्बनिक पदार्थों से भिन्न प्लास्टिक का निबटान अत्यन्त मुश्किल और जटिल काम है। घरों से निकलने वाले कार्बनिक कूड़े जैसे साग–सब्जियों के

छिलके, कागज, पेड़ पौधों के अवशेष, जानवरों के अवशेष, लकड़ी जैसी चीजें कुछ महीनों में आसानी से अपघटित होकर मिट्टी में मिल जाती हैं। लेकिन इन्हीं कचरों के साथ कूड़ेदानों में फेंका गया प्लास्टिक वर्षों ज्यों का त्यों बना रहता है। नीचे दैनिक उपयोग की कुछ वस्तुओं और उनके अपघटित होने का समय दिया गया है –

सूती कपड़े	1.5 माह
कागज	2.5 माह
रस्सी	3–14 माह
प्लास्टिक लेपित कागज	5 वर्ष
प्लास्टिक थैले	10–20 वर्ष
चमड़े के जूते	25–40 वर्ष
नायलान	30–40 वर्ष
टिन के बर्तन	50–100 वर्ष
अल्युमिनियम के बर्तन	80–100 वर्ष

शीघ्र अपघटित न होने के कारण प्लास्टिक कचरा आज पर्यावरण के लिए विश्वव्यापी समस्या है। यह मनुष्य ही नहीं, सम्पूर्ण जीव जगत के लिए समस्या है। शहरों में प्लास्टिक कचरे के ढेर लगते जा रहे हैं। नालियाँ आये दिन जाम हो रही हैं। सड़कों पर घूमने वाले पशु अक्सर प्लास्टिक खाकर कालकवलित हो रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में भी प्लास्टिक का उपयोग तेजी से हो रहा है जिससे खेतों में प्लास्टिक की एक परत बन रही है फलतः वर्षा जल का जमीन के अन्दर प्रवेश रुक रहा है। मिट्टी में काम करने वाले लाभदायक प्राणी जैसे केंचुए आदि अपना काम नहीं कर पा रहे हैं।

लम्बे समय तक अपघटित न होने के अलावा भी प्लास्टिक अनेक अन्य विषाक्त प्रभाव छोड़ता है, जो मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। उदाहरणस्वरूप पाइपों, खिड़कियों और दरवाजों के निर्माण में प्रयुक्त पी.वी.सी. प्लास्टिक विनाइल क्लोराइड के बहुलीकरण से बनाया जाता है। यह रसायन मस्तिष्क एवं यकृत में कैंसर पैदा कर सकता है। मशीनों की पैकिंग बनाने के लिए अत्यन्त कठोर पॉलीकार्बोनेट प्लास्टिक प्रयोग किए जाते हैं। ये प्लास्टिक फास्जीन यौगिकों के
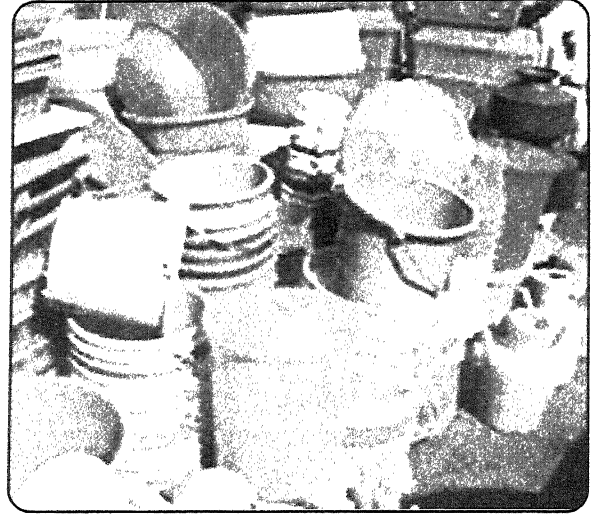
बहुलीकरण से प्राप्त किए जाते हैं। इनमें एक अवयव फास्जीन अत्यंत विषैली व दमघोंटू गैस है। फार्मेल्डिहाइड अनेक प्रकार के प्लास्टिकों के निर्माण में प्रयुक्त होता है। यह रसायन त्वचा पर दाने उत्पन्न कर सकता है। कई दिनों तक इसके सम्पर्क में बने रहने से दमा तथा साँस सम्बन्धी बीमारियाँ हो सकती हैं। प्लास्टिकों में लचीलापन पैदा करने के लिए प्लास्टिसाइजर वर्ग के कार्बनिक यौगिक मिलाए जाते हैं। ऐसे कुछ यौगिक हैं– थैलेट, एडीबेट, सीवैसेट एस्टर तथा कई प्रकार के पालीएथीलीन ग्लायकॉन यौगिक। ये यौगिक कैंसरजनी होते हैं।

प्लास्टिक में मिले हुए ये जहरीले पदार्थ प्लास्टिक के निर्माण के समय प्रयोग किए जाते हैं। तैयार (ठोस) प्लास्टिक के उपयोग में ये तुरन्त कोई खतरनाक असर नहीं डालते, लेकिन प्लास्टिक के बर्तनों में यदि लम्बे समय तक खाद्य सामग्री रखी रहे, शरीर की त्वचा लम्बे समय तक प्लास्टिक के संपर्क में रहे तो प्लास्टिक के जहरीले रसायनों का असर हो सकता है। इसी तरह जो प्लास्टिक कूड़ेखानों में फेंक दिया जाता है, कूड़े में लम्बे समय तक पड़े रहने से वातावरण में अनेक विषैले प्रभाव छोड़ सकता है।

प्लास्टिक कूड़े को ठिकाने लगाने के लिए अब

तक तीन उपाय अपनाये जाते रहे हैं। आमतौर पर प्लास्टिक के न सड़ने की प्रवृत्ति को देखते हुए इसे गड्ढ़ों में भर दिया जाता है। दूसरे उपाय के रूप में इसे जलाया जाता रहा है। लेकिन यह तरीका बहुत ही प्रदूषणकारी है। अलग–अलग प्लास्टिक जलाने पर अलग अलग अनेक प्रकार की विषाक्त गैसें भी निकलती हैं। उदाहरणस्वरूप– पालीस्टीरीन प्लास्टिक को जलाने पर क्लोरो फ्लोरोकार्बन निकलते हैं, जो वायुमण्डल की ओजोन परत के लिए नुकसानदायक हैं। इसी प्रकार पॉलीविनाइल क्लोराइड को जलाने पर क्लोरीन, नायलोन और पालीयूरेबीन को जलाने पर नाइट्रिक आक्साइड जैसी विषाक्त गैसें निकलती हैं।

प्लास्टिक को ठिकाने लगाने का तीसरा और सर्वाधिक चर्चित तरीका प्लास्टिक का पुनर्चक्रीकरण है। पुनर्चक्रीकरण का मतलब प्लास्टिक कूड़े से पुनः प्लास्टिक प्राप्त करके प्लास्टिक की नई चीजें बनाना। प्लास्टिक पुनर्चक्रीकरण की शुरुआत सर्वप्रथम 1970 में कैलीफोर्निया की एक फर्म ने किया था। इस फर्म ने प्लास्टिक की खुर्चन और दूध की प्लास्टिक बोतलों से नालियों के लिए टाइल्स तैयार किए। प्लास्टिक के पुनर्चक्रीकरण में यूरोप के देश आगे हैं। भारत में अभी प्लास्टिक पुनर्चक्रीकरण का कार्य बहुत कम किया जाता है। इसका सबसे बड़ा कारण पुनर्चक्रीकरण प्रक्रिया का मँहगा होना है।

प्लास्टिक पुनर्चक्रीकरण प्रक्रिया कहने में जितनी आसान लगती है, असलियत में यह उतनी आसान नहीं हे। इसका सबसे बड़ा कारण प्लास्टिक की विविधता है। अलग–अलग उपयोग के लिए बनाए गए प्लास्टिक में अलग अलग रसायन होते हैं। प्लास्टिक कूड़े में एक ही प्रकार के प्लास्टिक की प्राप्ति सम्भव नहीं, इसीलिए पुनर्चक्रीकरण के लिए पहले प्लास्टिक कूड़े से अलग प्रकार के प्लास्टिक छाँट लिए जाते हैं। छँटाई के लिए कई बातों की जानकारी आवश्यक होती है। सबसे पहले यह जानना आवश्यक है कि प्लास्टिक किस रासायनिक प्रकृति का है। रासायनिक प्रकृति के अनुसार प्लास्टिक को तीन समूहों में विभाजित किया जाता है 1. पालीआलीफीन्स, 2. स्टीरेनिक्स एवं 3. विनाइल्स। पालीआलीफीन्स भी घनत्व के आधार पर दो प्रकार के होते हैं। कम घनत्व वाले पालीएथिलीन जैसे प्लास्टिक के थैले और फेरीबैग तथा अधिक घनत्व वाले पालीप्रापीलिंस जैसे प्लास्टिक की रस्सियाँ और प्याले आदि। स्टीरेनिक्स का उपयोग विद्युतरोधी उपकरण बनाने में किया जाता है। विनाइल्स प्लास्टिक के रसायन रखने की बोतलें, एक्स–रे फिल्म, खिलौने आदि बनाए जाते हैं। गुणवत्ता के आधार पर भी प्लास्टिक को अलग अलग किस्मों में विभाजित किया जाता है। प्लास्टिक के कारखानों से प्लास्टिक उत्पादन के समय प्राप्त खुर्चन उत्तम कोटि का प्लास्टिक कूड़ा होता है, जो पुनर्चक्रीकरण के लिए उत्तम माना जाता है, लेकिन वही प्लास्टिक जब कूड़ेखाने से प्राप्त किया जाता है तो वह निकृष्ट कोटि का होता है।

पुनर्चक्रीकरण क्रिया तीन प्रकार से की जाती है। छँटाई के बाद प्लास्टिक अवशेषों को उसी तरह के प्लास्टिक उत्पाद में बदला जाता है, जिससे वह प्लास्टिक वस्तु बनी थी। पुनर्चक्रीकरण की दूसरी प्रक्रिया में प्लास्टिक उत्पाद से अन्य प्लास्टिक वस्तुएँ बनाई जाती हैं। प्लास्टिक कूड़े के द्वारा जो प्लास्टिक उत्पाद बनता है, वह पहले वाले मूल उत्पाद की अपेक्षा निकृष्ट होता है। इसीलिए पुनर्चक्रीकरण के बाद दुबारा बनी वस्तुएँ पहले जैसी गुणवत्ता वाली नहीं होतीं। पुनर्चक्रीकरण का एक तरीका रासायनिक पुनर्चक्रीकरण है। इसमें प्लास्टिक अवशेषों को ऊष्मा देकर पेट्रोलियम पदार्थ में परिवर्तित कर दिया जाता है। जापान प्लास्टिक कूड़े से तेल पैदा कर रहा है। अनेक प्लास्टिक अवशेषों को ऊष्मा के बजाय रासायनिक विधियों से तेल के रूप में बदल दिया जाता है।

ग्रामोदय प्रकाशन
घूरपुर, इलाहाबाद

घटते वन्य जीव : सिकुड़ता मानव जीवन

डॉ० रमेश बाबू

हमारा देश जीव जन्तुओं की विभिन्न किस्मों से सम्पन्न है, लेकिन वनों के अत्यधिक दोहन से आज उनका अस्तित्व खतरे में पड़ता जा रहा है। बढ़ती हुई जनसंख्या, औद्योगीकरण, नई बस्तियों के निर्माण एवं खेती के लिए और अधिक भूमि प्राप्त करने हेतु तेजी से वन नष्ट किए जा रहे हैं, जिससे वन्यप्राणी विलुप्त होते जा रहे हैं। भारत में लगभग 150 जंगली जानवरों की जातियाँ विलुप्तता के कगार पर हैं। ये वन्य जीव प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य को कई तरह से लाभ पहुँचाते हैं। ये प्राकृतिक सन्तुलन बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं, लेकिन मनुष्य अपने निजी स्वार्थ के लिए इन वन्य जीवों को नष्ट कर अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार कर अपना जीवन दुश्वार कर रहा है।

विलुप्त/संकटग्रस्त वन्य जीव

आज 'डोडो' नामक पक्षी किस्से-कहानियों और किताबों की दुनिया में ही मौजूद है। मात्र 50 वर्ष की छोटी सी अवधि में इस पक्षी का विलुप्त हो जाना एक ऐसा सवाल है जिसका उत्तर किसी प्राणिशास्त्री या प्रकृतिविज्ञानी के पास भी नहीं है। मूलरूप से मॉरिशस की रहने वाली डोडो एक बहुत ही विशाल पक्षी थी, लेकिन अन्य पक्षियों की तरह यह उड़ नहीं सकती थी। एक बार उड़ने से लाचार होने के बाद भोले-भाले डोडो आसानी से मनुष्य का शिकार बनते गए। पुर्तगाली नाविकों ने भोज्य पदार्थ के रूप में जमकर डोडो का शिकार किया तथा धीरे धीरे यह सुन्दर पक्षी हमेशा हमेशा के लिए विलुप्त हो गया।

उत्तरी अमेरिका में कभी 'पीरू' नामक पक्षी की संख्या एक करोड़ से भी ज्यादा थी, मगर अब वे हजारों में हैं। भारत में भी पीरू पक्षी कुछ ठंडे इलाकों में पाये जाते हैं। यहाँ भी वही हाल है। शिकार यहाँ भी हो रहा है। भारतीय वन्य जीव संरक्षण संस्था ने भी हाल ही अपनी एक रिपोर्ट में कहा है कि भारत में भी उनका
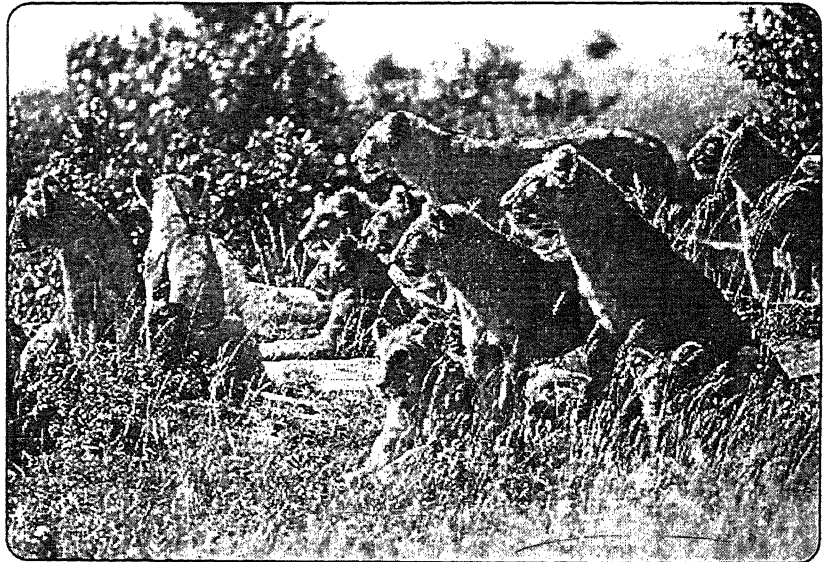
भविष्य खतरे में है।

1997 की गणना के अनुसार भारत में जंगली हाथियों की संख्या लगभग 29,000 है। एशियाई हाथियों की संख्या भारत के अतिरिक्त 13,000 के आसपास है। इसके विपरीत अफ्रीकी हाथियों की संख्या 2,50,000 है। एशियाई हाथियों की संख्या में कमी का प्रमुख कारण हाथीदाँत (आइवरी) एवं त्वचा के लिए इनके अवैध शिकार, जंगलों के बीच से रेलवे लाइनों का बिछाया जाना और अनेक प्रकार के अनियंत्रित विकास कार्य है। इसके अतिरिक्त जब हाथी भोजन की तलाश में जंगलों से निकलकर खेतों में घुस जाते हैं तो मानवीय संघर्ष के परिणामस्वरूप हाथियों का मारा जाना एक चिंता का विषय है।

तस्करों द्वारा नदियों से कछुवों को पकड़कर उन्हें एकत्रित करके विदेशों में बिक्री हेतु भेजने की खबरें, आम खबरें बन गई हैं।

सन् 2002 जून व जुलाई माह में भुवनेश्वर स्थित नन्दनकानन प्राणीउद्यान में हुई 14 सफेद बाघों की मौत के बाद, बाघों के संरक्षण की समस्या जैव विविधता संरक्षकों और पशुप्रेमियों के लिए एक शोचनीय मुद्दा बन चुकी है।

शिकार पर रोक के बावजूद पटियाला के आसपास स्थित जंगलों में राष्ट्रीय पक्षी मोर का अस्तित्व संकट में है। यहाँ के सात जंगलों में हर साल दर्जनों मोर खेतों में गेहूँ के जहरीले बीज खा कर बेमौत मारे जा रहे हैं। हालत यह है कि इन सभी जंगलों में मोरों की संख्या पिछले चार–पाँच सालों से लगभग 2000 पर ही रुकी पड़ी है। दरअसल किसान गेहूँ के बीज कीटनाशक दवाओं के घोल में डुबोकर खेतो में बोते हैं। अक्टूबर नवंबर के महीने में मोर जब जंगलों मे नजदीक सटे इन खेतों में चारे के लिए पहुँचते हैं। ये बीज खाकर मारे जाते हैं। पटियाला के जिला वन अधिकारी ने जहरीले बीजों के खाने से मोरों के मरने की घटनाओं की पुष्टि की है। करीब चौदह करोड़ सालों तक डायनासोर इस दुनिया का बेताज बादशाह रहा, फिर एकाएक कोई साढ़े छह करोड़ साल पहले इस संसार से सदा के लिए गायब हो गया। डायनासोर के विलुप्त हो जाने के संबंध में कई धारणाएँ प्रचलित हैं। नोबेल पुरस्कारविजेता अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ0 लुईस अल्वारेज के अनुसार बाहर के एक ग्रह के पृथ्वी से टकरा जाने से उत्पन्न प्रदूषण से यह जाति खत्म हो गई। कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि अपने को यह जीव दुनिया में रहने के काबिल बना नहीं पाए और इसलिए खत्म हो गए।

30 मार्च 2003 को दैनिक भास्कर में छपी खबर 'जंगली जानवर' पकड़ने वाले दो मदारी बाबू' अत्यन्त कारुणिक थी। पुलिस द्वारा शिवालिक एवन्यू क्षेत्र से गिरफ्तार किए गए ये मदारी उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे, इनसे पाँच भालू व दो बंदर बरामद किए गए। उक्त आरोपियों को 'पर्यावरण व जंगली जीव बचाओ समिति' के कार्यकर्ताओं द्वारा रोपड़ स्थित वाइल्ड लाइफ विभाग के अधिकारियों को इस सम्बन्ध में सूचना दिए जाने पर पकड़ा गया।

विश्व में अनगितन प्रजातियाँ जीव जन्तुओं की हैं जिनकी संख्या कभी करोड़ों में और अरबों में आँकी जाती रही है लेकिन अब धीरे धीरे इनमें कमी हुई है।

भारत इस क्षेत्र में अति समृद्ध रहा है।

350 प्रकार के स्तनधारी, 1200 प्रकार के पक्षी तथा 20,000 से भी अधिक प्रकार के कीड़े–मकोड़े, 750 प्रकार के सरीसृप आज भी यहाँ हैं। इनमें से लगभग 66 प्रकार के स्तनधारी, 38 पक्षियों की प्रजातियाँ और 18 प्रकार की सरीसृप प्रजातियाँ लुप्तप्राय श्रेणी में आ गई हैं। एक स्तनधारी तथा तीन पक्षी प्रजाति समाप्त हो चुकी हैं। फिर भी हमारा देश इस क्षेत्र की विविधता के लिए सौभाग्यशाली है।

वन्य प्राणियों के विलुप्त होने के प्रमुख कारण

भारी जनसंख्या के दबाव के कारण घने जंगल जो इनके सुरक्षित आवास थे, कृषि उत्पादन, मकान निर्माण और बाँधों तथा बिजली उत्पादन केन्द्र बनाने हेतु काटे गये। वन्य जीवों का असुरक्षित स्थानों से पलायन हुआ और वह मर गये अथवा मार दिए गये। अतः संख्या पर उसका प्रभाव पड़ा।

वन्य जीवों की संख्या आखेट के कारण भी कम हुई है। मनुष्य अपने मनोविनोद के लिए तो आखेट करता ही है, साथ ही कुछ वन्य प्राणियों को वह आर्थिक लाभ के लिए भी मारता है जैसे कस्तूरी मृग को कस्तूरी के लिए, हिरन, सांभर, तेंदुआ, चीता, शेर, खरगोश आदि को उनकी खाल के लिए, हाथी को उनके दाँत के लिए।

घने जंगल अथवा वन्य जीव आवास गृहों के सुरक्षित क्षेत्र में घरेलू और पालतू जानवरों के प्रवेश से वहाँ की घास आदि में अत्यधिक कमी आई। जंगल का प्राकृतिक सन्तुलन बिगड़ गया। भोजन श्रृंखला में विघ्न पैदा हुआ अतः वन्य जीवों का स्वतः पारिस्थितिकी तंत्र नष्ट हो गया। पानी की कमी भी एक कारण बनी।

वनों की रक्षा के लिए तैनात प्रशासन तंत्र की क्षमता भी उतनी प्रभावी नहीं हो सकी जितनी अपेक्षा थी, अतः चोरी–छिपे शिकार, ग्रामीण लोगों का अवैध प्रवेश, प्रतिबन्धित क्षेत्र में अत्यधिक चराई और वन अग्नि आदि कई समस्याओं ने वन क्षेत्रों की सार्थकता को कम कर दिया। इससे वन्य प्राणी प्रभावित हुए।

विभिन्न प्रकार की कीटनाशी दवाइयों के प्रयोग ने कीट–पतंगों को नष्ट किया है, तो अनेक जलचर कुछ मानव स्वार्थपूर्ति हेतु, कुछ समुद्री प्रदूषण के कारण और कुछ उनकी कोई सुरक्षा न होने के कारण काल के ग्रास बन गये। इन सबने मिलकर प्रकृति तंत्र को गड़बड़ाया है और नष्ट किया है।

विगत वर्षों में राजा महाराजा व जागीरदार लोग अपने शौक के लिए वन्य, पशुओं का शिकार करते थे, और इन पशुओं की खालों को अपने खास कमरे में लगाया करते थे। बाहर से आने वाले मेहमानों के लिए विशेष शिकार की व्यवस्था आम बात थी।

वन्य जीवों का महत्व

ये पर्यावरण की शुद्धता के सही सूचक हैं : वन्य जीव चाहे स्थलीय हों, जलचर हों अथवा उभयचर हों, इनकी खास उपस्थिति शुद्ध और अशुद्ध पर्यावरण की सूचना अत्यन्त प्रभावी रूप से देती है। उदाहरण के लिए एक घरेलू मक्खी की उपस्थिति जहाँ प्रदूषित वातावरण बताती है वहीं एक भँवरा शुद्ध वातावरण का प्रतीक है। यदि किसी जलस्रोत के इर्द–गिर्द भारी संख्या में टिलुआ (Blackwinged stilts), जिरिया (Ring plover) तथा टिटिहरी (Sand pipers) मिलते हों, तो यह पानी की गुणवत्ता में कमी बताते हैं, लेकिन यदि वहीं बड़ी कुररी, रामचौरिया अथवा बत्तख आदि की अधिकता हो तो निश्चय ही वह जल स्वच्छ है और पीने योग्य है। आकाश में पक्षियों का अभाव वायु प्रदूषण इंगित करता है। वहीं हुद–हुद (Hoopoe), खंजन पक्षी (Wegtails) और शकरखोरा (Sunbirds) हरियाली और शुद्ध पर्यावरण में ही आते हैं।

ये प्रदूषण कम करके स्वच्छ पर्यावरण प्रदान करते हैं : कुछ वन्य जीव ऐसे भी हैं जैसे गीदड़, जंगली सूअर और बिज्जू जो वन क्षेत्र की गंदगी को समाप्त कर देते हैं। गिद्ध, कौवे तथा क्रोच पक्षी सड़े–गले जानवरों को खा जाते हैं। बुलबुल, तोता और कई प्रकार के पक्षी पेड़ों से गिरने वाले फूल–फल–पत्तियों को उठा ले जाते हैं, और इस प्रकार वनों की सफाई में योगदान देते हैं।

कछुआ, मछली, मगर आदि इसी प्रकार की गंदगी को मिटा देते हैं और पानी को स्वच्छ रखते हैं।

ये आहार के सम्पूरक हैं : वन्य जीव प्रोटीन युक्त मांस देते हैं और इस क्रम में तीतर, चिकोर, हिरन, खरगोश, सुअर, भेड़, बकरी आदि गिने जा सकते हैं। मछली, केकड़ा, साँप, झींगा आदि भी भोजन के प्रमुख अंग बने हैं। इनसे अन्न की कमी की पूर्ति हुई है।

ये खाद की पूर्ति करते हैं : अपनी स्वाभाविक प्रक्रिया के अनुरूप जब यह चलते हैं, उड़ते हैं तो इनकी बीटें रास्ते में ही गिर जाती हैं। इन बीटों का खाद के रूप में प्रयोग बहुत ही लाभप्रद होता है।

ये स्वस्थ मनोरंजन व ज्ञान प्रदान करते हैं : विदेशी एवं स्वदेशी अनेकों टूरिस्ट वन्य जीव स्थलों को देखने जाते हैं और वहाँ वन्य जीवों के क्रियाकलापों से मनोरंजन भी प्राप्त करते हैं। विविध प्रकार का बहुमूल्य ज्ञान भी अप्रत्यक्ष रूप से अर्जित होता है।

ये पुरातन सांस्कृतिक गरिमा की याद दिलाते हैं : भारत धर्म और संस्कृति का देश रहा है। वन्य जीवों के संरक्षण हेतु इनको अनेक त्योहारों और पर्वों से जोड़ने के पीछे एक पुष्ट आधार था, जिससे लोग इन्हें बचाये रखें। नागपंचमी (नागदेवता), दशहरापूजन (अश्व), गोवर्धन पूजा (गोवंश), शिवरात्रि (नन्दीपूजन) आदि ऐसे ही उदाहरण हैं। इनके अलावा मछलियों को आटे की गोलियाँ, चीटियों को आटा, गाय को गोग्रास, कुत्ते को रोटी, चिड़ियों को दाना, बंदरों को पूड़ी, फल आदि को इसी संदर्भ में सम्मिलित किया जा सकता है।

ये प्राकृतिक संतुलन बनाये रखते हैं : वन्य प्राणी प्रकृति में पारिस्थितिक संतुलन बनाये रखते हैं, एक बार भी अगर यह संतुलन बिगड़ जाय तो सीधे मानव जाति को प्रभावित करता है। उदाहरण के तौर पर अगर शिकारी वन्य प्राणियों को नष्ट कर दिया जाय तो शाकाहारी प्राणियों की संख्या में इतनी वृद्धि हो जायेगी कि वे जंगल में पेड़ पौधों को नुकसान पहुँचायेंगे और उनकी संख्या कम होने पर ये जानवर खेतों में पहुँच कर किसान की फसलों को नुकसान पहुँचाने लगेंगे। जंगलों के कम होने पर वर्षा कम होगी, जिससे फसल ठीक से नहीं उगेगी, परिणामस्वरूप उस स्थान की आर्थिक स्थिति को नुकसान पहुँचेगा।

एक अन्य उदाहरण में मनुष्य ने साँप से डरने के कारण साँपों की बड़ी संख्या में नष्ट कर दिया। अधिकतर साँप चूहे खाते हैं और चूहों की संख्या पर नियंत्रण रखते हैं। साँपों के कम होने से चूहों की संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं रह पाएगा। इनके संख्या में बढ़ने से दो प्रकार से मनुष्यों को हानि पहुँचती है। चूहे खेतों में कोमल पौधों की जड़ों को कुतर कर पौधों को नष्ट कर देंगे और अनाजभण्डारों में संचित अनाज को भी वे खा कर नष्ट करेंगे। सामान्य अवस्था में चूहे कुल अनाज का 20–25 प्रतिशत खा जाते हैं। संख्या में बढ़ने पर तो इनके द्वारा किए गये नुकसान का अनुमान लगाना भी कठिन हो जाएगा। परिणाम होगा अकाल और मनुष्य भूखों मरेंगे। साथ ही चूहे प्लेग भी फैलाते हैं। अतः पारिस्थितिक तंत्र में प्रत्येक जीव का अपने आसपास के जीवों के साथ घनिष्ठ संबंध है, तथा तंत्र के टूटने पर इनका सीधा प्रभाव मानव जीवन पर पड़ता है।

कुल मिलाकर वन्य जीवों की घटती संख्या से स्थिति इतनी गंभीर हो चुकी है कि अगर अभी भी वन एवं वन्य जीवों के संरक्षण पर ध्यान नहीं दिया गया तो शायद सोचने के लिए भी समय नहीं बचेगा। अतः लोगों को चाहिए कि वे अपने निजी स्वार्थ के लिए किसी भी वन्य जीव का आखेट न करें, न ही उन्हें तंग करें, बल्कि आम जनता को वन्य जीवों को मानव जीवन में महत्व एवं इनके विलुप्त होने पर मानव जीवन में आने वाली समस्याओं से अवगत करायें तथा वन्य जीव संरक्षण हेतु मुख्य धारा में जोड़ने के लिए प्रेरित करें तभी हम आने वाले संकट से बच सकते हैं।

स्नातकोत्तर शिक्षक (जीव विज्ञान)
जवाहर नवोदय विद्यालय करीरा
जिला, महेन्द्रगढ़ (हरियाणा)–123027

आज का विश्व और पानी

डॉ० आर.सी. गुप्ता

जीवन के लिए पानी आवश्यक है और यही कारण है कि विश्व की सम्पूर्ण प्राचीन एवं विकसित सभ्यताएँ नदियों के किनारे ही विकसित हुई हैं, यथा मोहनजोदड़ो की सभ्यता सिंधु नदी पर, चीन की सभ्यता व्हांगो नदी पर, मेसोपोटामिया की सभ्यता बोर्डन नदी पर, और मिस्र की सभ्यता नील नदी पर। जल के बिना मानव ही क्या संभवतः किसी भी जीव का जीना कठिन है। पृथ्वी पर जीवन एककोशीय जीव के रूप में सर्वप्रथम जल से ही प्रकट हुआ।

भारतीय संस्कृति में जल का महत्व सर्वाधिक है तथा कोई भी शुभ कार्य जन्म से मृत्यु पर्यन्त जल के बिना सम्पन्न नहीं होता। इसीलिए हमारे यहाँ भी नदियों को जीवनदायिनी माना जाता है। हमारे वैदिक ऋषि भी आराधना करते हैं—

'शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु'

अर्थात् हमारे शरीर के लिए शुद्ध जल प्रवाहित होते रहे। इसी प्रकार ऋग्वेद में जल की प्रार्थना की गई है—

'आपोहिष्टा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दद्यातन,
महेरणाय चक्षसे'

अर्थात् जल हमें सुख दे, सुखोपयोग के लिए पुष्ट करें, बड़ा करे तथा दृढ़ करे। हम आपसे अन्नादिक वरणीय पदार्थों के स्वामी, मनुष्य के रक्षक और रोगमात्र की औषधि की याचना करते हैं।

पानी मनुष्य ही नहीं हर जीव के लिए आवश्यक है और जिस प्रकार आज विश्व में पानी का संतुलन बिगड़ रहा है, वह भयंकर चिन्ता का विषय है। अब आगे का विश्व युद्ध देशों, राज्यों, प्रान्तों अथवा शान शौकत और धन लोलुपता या अन्य सामाजिक विकृतियों के लिए न होकर पानी के लिए ही होगा। अपने देश में ही पंजाब, हरियाणा और दिल्ली के बीच यमुना नदी के जल के बारे में और कर्नाटक और तमिलनाडु के बीच कावेरी जल के बारे में तथा भारत पाकिस्तान के बीच सिन्धु नदी के पानी और भारत और बंगलादेश के बीच गंगा नदी के जल के बारे में जो विवाद चल पड़े है, वह निश्चित ही भविष्य की ओर इंगित कर रहा है। ऐसा भारत में ही नहीं, विश्व के अन्य देशों में भी चल रहा है। शायद 2003 का ईराक युद्ध सत्ता तेल के लिए आखिरी युद्ध हो।

यह सत्य है कि 1987 से 2002 तक पूरे भारत में बहुत बड़ा सूखा नहीं पड़ा यद्यपि उससे पहले 1972 और 1979 में भी सूखा पड़ा था और 1988 से लेकर 2001 तक पूरे देश में लगातार अच्छी बारिश होती रही। केवल 2002 में ही इस देश में सबसे लम्बी औसतन

बारिश से लगभग 19 प्रतिशत कम वर्षा हुई, जिस कारण देश के लगभग 20 प्रतिशत भाग में सूखा और 10 प्रतिशत भाग में भयंकर सूखा पड़ा। इस भयंकर सूखे से सबसे अधिक प्रभावित रहा पूर्वी और पश्चिमी राजस्थान, वहाँ 60 से 71 प्रतिशत तक वर्षा कम हुई और भयंकर सूखे का सामना करना पड़ा। दिल्ली, हरियाणा, चंडीगढ़ और पंजाब में भी 36 प्रतिशत कम वर्षा हुई। तमिलनाडु, लक्ष्यद्वीप और कर्नाटक के कुछ भागों में 40–50 प्रतिशत कम वर्षा हुई। एक ओर तो कम वर्षा, दूसरी ओर इस वर्षा के जल से वनों के कटाव के कारण भूमिक्षरण और वर्षा का पानी बाढ़ के रूप में बह जाना, धीरे धीरे नई खेती में अधिक पानी के प्रयोग ने एक विषम परिस्थिति पैदा कर दी है, जो प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। एक ओर जहाँ वर्षा का जल बर्बाद हो रहा है वहीं दूसरी ओर तालाब, कुएँ, बांधों इत्याद के नष्ट होने से जल का स्तर घटता ही जा रहा है।

आज उत्तर प्रदेश के अनेक गाँवों में भूमिगत पानी का स्तर काफी नीचे चला गया है, जिन गाँवों में आबादी के पहले जल 15–20 फीट पर था, वह कुछ वर्ष पूर्व 90–120 फीट नीचे चला गया और इस वर्ष यह लगभग 150 फीट से भी नीचे चला गया है।

जीवन की सभी क्रियाएँ जल पर आधारित होती हैं और इन सभी क्रियाओं के फलस्वरूप जो जल बचता है, वह विषैला, दूषित या विजातीय होता है– जिसका निष्कासन अत्यन्त आवश्यक है। आज के युग में प्रदूषण बढ़ता ही जा रहा है– प्रदूषण अब केवल मिट्टी, जल और वायु में ही नहीं, भोजन में भी पहुँच गया है। शरीर के दूषित या विजातीय भागों को निकालने की क्रियाओं में मल, मूत्र, साँस और स्वेदन (पसीना) होता है तथा इन सभी क्रियाओं में जल ही वाहक का कार्य करता है। अतः शरीर में जल का किसी भी कारण कम हो जाना अनेकों रोगों का कारण बन सकता है।

आज बड़े नगरों में सम्पन्न व्यक्ति नगरपालिका के नल का पानी न पीकर बोतलबन्द पानी पी रहा है। उसकी अच्छी कीमत भी देता है। 15 रुपये प्रति लीटर पर उसमें भी बड़ी मात्रा में कीटाणुनाशक दवाएँ पायी जाती हैं जो अनेकों रोगों को जन्म देती हैं। सबसे दुःखदायी बात यह है कि भारतीय मानक संस्थानों ने इन पीने के पानी के जो मानक निर्धारित किए थे उनमें इन हानिकारक कीटाणु नाशक दवाओं की मात्रा के बारे में स्पष्ट निर्देश नहीं दिए थे और इसी कारण भारतीय और बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ शुद्ध जल के नाम पर दूषित पानी बेच रही हैं, उनका कहना है कि आखिर जल तो भूगर्भ में स्थित जल भंडार से ही लेंगे और अगर यह जल ही दूषित हो तो क्या कर सकते हैं ? यह सच है कि एक ओर हमें कम पानी मिल रहा है और दूसरे जो मिल भी रहा है, वह दूषित है।

संयुक्त राष्ट्र संघ का मानना है कि सन् 2025 तक 48 देशों में रहने वाले 28 करोड़ व्यक्ति पानी की कमी से प्रभावित होंगे और अगर यही हालत रही तो सन् 2050 तक 54 देश अर्थात् विश्व की आबादी का 40 प्रतिशत देश इस पानी की भारी कमी के चपेट में आ जाएगी।

एक ओर पानी की किल्लत और परेशानियाँ हो रही हैं तो वहीं दूसरी ओर हम भारतीय उसका दुरुपयोग और बर्बादी करने में सबसे आगे अगर न होंगे तो तीसरे या चौथे स्थान पर जरूर होंगे।

पानी की इस कमी के दो कारण हैं– वर्षा के जल का पूरा उपयोग जल स्तर बढ़ाने के लिए न करना और भूजल का अत्यधिक दोहन। हरित क्रान्ति में जहाँ हमें भरपूर उपज दी, वहीं अत्यधिक पानी का प्रयोग और जहरीली दवाओं का प्रयोग जिनका सबसे अधिक उपयोग सेब और आम के बागानों में किया जा रहा है। यह जहर इन फलों के माध्यम से मनुष्य के शरीर में केवल पहुँच ही नहीं रहा है बल्कि बढ़ भी रहा है। माँ के दूध से अधिक शक्तिवर्धक पोषक वस्तु बच्चे के लिए क्या होगी ? पर आज दिल्ली नगर के माताओं के दूध में यह मात्रा सुरक्षित से नौ गुनी अधिक हो गई है और कुछ माताओं के दूध में तो यह मात्रा अट्ठाइस गुनी अधिक है। ऐसे में अगर बच्चों को रक्त–कैंसर जैसी बीमारियाँ होती हैं तो क्या ताज्जुब है ? पहले

कहा जाता था, "एक सेब रोज खाएँ, डाक्टरों से निजात पाएँ" पर शायद अब इसका विपरीत ही होगा। हमारे पीने का पानी भी कितना दूषित होता है– उसका एक उदाहरण ही काफी होगा।

यह सत्य है कि भूमि में स्थित जल का स्तर कम होता जा रहा है। नई किस्मों की फसलों में जहाँ उत्पाद की मात्रा अधिक होती है वहीं पानी की अधिक आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त गाँवों में तालाब, कुएँ, बावड़ी लगभग समाप्त ही होते जा रहे हैं। शायद गाँव का तालाब कुओं के जल स्तर को ठीक रखने के लिए काफी सहायक होता है। गर्मियों में प्रायः यह तालाब गहरे हो जाते थे क्योंकि गाँव वाले इसकी मिट्टी से घर, चौपाल इत्यादि बनाते थे और फिर बरसात का पानी उसमें इकट्ठा हो जाता है और भूमिगत जल में साफ होकर पहुँचता है। इसके अतिरिक्त हर किसान चाहता है कि उसके खेत में वर्षा का अधिक से अधिक जल रुके ताकि जमीन की आर्द्रता और उपजाऊपन बना रहे पर अब बिजली से ट्यूबवेल चलाने तथा बिजली कम कीमत पर पाने के कारण किसान इस जल को अपने खेत में रुकने का प्रयत्न ही नहीं करता है और उपजाऊपन के लिए उसे रासायनिक खाद है ही तो फिर वर्षा का जल रोकने की क्या महत्व है वह क्यों सोचे ? और उसे उसकी आवश्यकता क्या है ? लेकिन यही वर्षा जब एक दो वर्ष लगातार न हो तब उनको पता चलता है कि वर्षा के जल और ट्यूबवेल के जल में क्या अन्तर है, यदि दो अलग अलग खेत में ट्यूबवेल का पानी से तथा दूसरे को वर्षा की जल का पानी से बनी आर्द्रता का विश्लेषण करें तभी पता चलता है कि कौन से पानी जमीन की आर्द्रता कितने दिनों तक बनाये रखता है और उनसे लगाये गये फसलों और पौधों पर क्या प्रभाव पड़ता है ? आज का भोजन, अन्न और फल शायद रोगों से लड़ने की क्षमता तो दे नहीं सकते बल्कि रोग बढ़ा ही सकते हैं, अब समाज में कैंसर ही नहीं अनेकों रोग– मधुमेह, गठिया, रच्च रक्तचाप और हृदय के रोग भी बढ़ते ही जा रहे हैं। इनसे बचने का शायद एक ही उपाय होगा। अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक जीवन शैली अपनाना जिसमे सात्विक भोजन, पर्याप्त निद्रा और संयमित जीवन शामिल होगा।

78 बी, टैगोर टाउन
इलाहाबाद

युद्ध से प्रवासी पक्षियों की जान साँसत में

खाड़ी युद्ध भाग 2 से ईराक के मासूम नागरिकों की ही नहीं, प्रवासी पक्षियों की भी जान साँसत में आ गई थी। प्रवासी पक्षी ईराक में तेल के जलते कुओं से उठने वाले धुयें की वजह से फैले प्रदूषण के आसान शिकार हुए। धुयें की वजह से पक्षी न सिर्फ भ्रम में पड़ कर राह भटक गये बल्कि उनका समूह भी तितर–बितर हो गया। इसके परिणामस्वरूप वे न केवल गर्मियाँ बिताने के लिए रूस पहुँचने में विफल हुए बल्कि उनकी जान भी गई। हर साल रूस से बड़ी संख्या में प्रवासी पक्षी जाड़े के मौसम में ईराक आते हैं। इस मौसम की समाप्ति के बाद यह वापस रूस का रास्ता पकड़ते हैं। हर साल की तरह जब इन बेजुबानों ने वापस घर की राह पकड़ी तो उनका सामना खाड़ी युद्ध भाग–2 से उपजी विकट परिस्थितियों से हुआ। पर्यावरणविदों ने भविष्यवाणी की है कि इस बार पर्यावरण को 1991 के खाड़ी युद्ध से कई गुना ज्यादा नुकसान होगा। एक्तेरिंगबर्ग (जर्मनी) के एकेडमी ऑफ साइंसेज इंवायरमेंट इंस्टीट्यूट के पक्षीविज्ञानी वादिम रिबित्सवे के अनुसार 1991 के खाड़ी युद्ध के बाद लौटे प्रवासी पक्षियों के पंख तेल से तर रहते थे। इसके अलावा काफी उड़ान भरने से पहले ही मर गए थे। रशियन बर्ड कंजरवेशन सोसायटी के अध्यक्ष ब्लादिमीर गालुसिन के अनुसार तेल कुओं में लगी आग व तिगरिस, फरात नदी और फारस की खाड़ी में फैले तेल से पक्षियों का काफी नुकसान हो रहा है।

जल संरक्षण एवं पर्यावरण

अवधेश कुमार संत तथा डॉ० बी.के. द्विवेदी

भारत जैसे कृषिप्रधान देश के लिए भूमि के बाद जल सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है। देश के जल संसाधनों को भी प्रदूषण की समस्या का सामना करना पड़ रहा है, जिसके कारण प्रदूषित जल से होने वाले विभिन्न रोगों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हमारी आजादी के पचास वर्ष से भी अधिक बीत गये हैं फिर भी हम प्रत्येक नागरिक को पीने योग्य पानी उपलब्ध नहीं करा पा रहे हैं। आज भी भारत के लगभग 20 करोड़ लोगों को सुरक्षित पेयजल उपलब्ध नहीं है। देश के अधिकांश जलस्रोत, उद्योगों से, घरों से निकलने वाले अनुपचारित कचड़े, खेतों से बह कर आने वाले उर्वरकों, कीटनाशक दवाओं एवं अवशिष्टों के कारण प्रदूषित हो रहे हैं।

बायोवेद शोध एवं प्रसार केन्द्र, इलाहाबाद ने पीने योग्य पानी की गुणवत्ता पर सर्वेक्षण किया और एकत्र किए गए पानी के प्रतिदर्श के विश्लेषण एवं सर्वेक्षण में पाया गया कि उत्तर प्रदेश के अधिकांश जिलों के शहरी क्षेत्रों जैसे– मेरठ, बिजनौर, बुलन्दशहर, बदायूँ, अलीगढ़, बरेली, मुरादाबाद, पीलीभीत, शाहजहाँपुर, खीरी, कानपुर, रायबरेली, सुल्तानपुर, फतेहपुर, इलाहाबाद, जौनपुर, मिर्जापुर आदि में पीने वाले पानी में फ्लोराइड की सान्द्रता 1.5 से 3 मिग्रा0 प्रति लीटर हो गई है जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में यह सान्द्रता 6.5 मिग्रा0/लीटर पाई गई। नाइट्रेट की मात्रा 1000 मिग्रा0/लीटर से अधिक पाई गई। जल में नाइट्रेट का सान्द्रण इतना अधिक है कि इस जल के पीने से लोगों में कई नई बीमारियाँ उत्पन्न हो गई हैं। फसलों में नाइट्रोजन के अत्यधिक उपयोग से मृदा में नाइट्रेट का सान्द्रण अधिक हो रहा है क्योंकि फसलों द्वारा केवल 30–35 प्रतिशत नाइट्रोजन का ही उपयोग किया जाता है। इसका प्रभाव मृदा पी.एच. एवं उत्पादन पर भी पड़ता है। इन सभी का प्रभाव लोगों के स्वास्थ्य पर पड़ता है जिससे लोगों के अन्दर विषाक्तता की मात्रा बढ़ती जा रही और लोगों के मानसिक स्तर का ह्रास हो रहा है। इन सभी का कारण जल प्रदूषण एवं असुरक्षित पर्यावरण है। प्रतिवर्ष जल से होने वाले रोगों से लगभग 15 लाख बच्चे मौत का शिकार होते हैं, हमारे शहरों और कस्बों में जल तथा मल उपचार की सुविधाओं में कमी कुल जल प्रदूषण की 75 प्रतिशत के लिए जिम्मेदार है, मात्र 25 प्रतिशत अच्छे शहरों के कचड़े को एकत्र करने तथा उसे उपचारित करने और समाप्त करने की सुविधाएँ हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 2003 को 'अन्तर्राष्ट्रीय स्वच्छ जल वर्ष' घोषित किया है। इसी संदर्भ में भारत सरकार ने भी वर्ष 2003 को 'स्वच्छ जल वर्ष' मनाये जाने का निर्णय लिया है। इसी परियोजना के तहत 'स्वच्छ जल धारा योजना' का कार्यक्रम चलाया जा रहा है। पृथ्वी पर इस समय 140 करोड़ घन मीटर जल है। इसका 97 प्रतिशत भाग खारा पानी है। इसके अलावा 17.5 प्रतिशत पानी बर्फीली चोटियों और हिम नदी में जमा पड़ा है, बाकी मात्र 0.75 प्रतिशत धरती के गर्भ में

छुपा हुआ है। आदमी के हिस्से कुल 136 हजार घन मीटर जल ही बचता है। वह नदियों, झीलों, तालों, पोखरों, और नमी के रूप में मिट्टी तथा हवा हेतु किया जाता है तथा 17 प्रतिशत का उपयोग उद्योग और 13 प्रतिशत का उपयोग घरेलू कार्यों में होता है। जो जल कृषि कार्य हेतु काम में लाया जाता है उसका 60 प्रतिशत वाष्पीकृत हो जाता है या नदियों में वापस चला जाता है या जमीन के अन्दर चला जाता है। एक टन अनाज पैदा करने के लिए लगभग 1000 टन पानी की आवश्यकता होती है।

जल संग्रहण के प्रमुख स्रोत महासागर हैं। वाष्पन तथा वर्षा महासागरों में जल संचार के प्रमुख माध्यम हैं। वर्षा का जल सतही बहाव से नदियों में मिलता है और नदियाँ महासागरों से मिलती हैं। औद्योगिक देशों में एक आदमी औसत 400–500 लीटर पानी का उपभोग करता है जबकि विकासशील देशों में यदि लोगों को 20 लीटर पानी प्रतिदिन 1 किमी० की दूरी पर उपलब्ध हो जाता है तो यह माना जाता है कि लोगों को स्वच्छ जल मिल रहा है। दक्षिणी अमेरिका के आराकामा नामक रेगिस्तानी इलाके में 1989–1994 के बीच पाँच वर्षों में एक बूँद भी पानी नहीं बरसा। ध्यातव्य है कि जहाँ 300 मिमी० से कम वर्षा होती है उसे शुष्क क्षेत्र कहा जाता है। विश्व की 60 करोड़ से अधिक आबादी शुष्क क्षेत्रों में निवास करती है। पीने के पानी में बहुत ज्यादा गंदगी हो तो उसका होना न होने के बराबर है। पीने के पानी में केवल 100 कालीफार्म जीवाणु हों तो उसे पीने योग्य पानी माना जाता है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा आयोजित जल सम्मेलन में मनुष्य की बीमारियों और मौतों के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार गन्दे जल को बताया गया है। गन्दे पानी से 30 खतरनाक बीमारियाँ फैलती हैं। इनमें से एक रोग आँत्रशोथ भी है जिससे प्रतिवर्ष 40 करोड़ लोग प्रभावित होते हैं और 16 करोड़ लोग मलेरिया के शिकार होते हैं। भारत में प्रति व्यक्ति जल का उपयोग मात्र 610 घन मी० प्रतिवर्ष है जबकि आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टीना, अमेरिका और कनाडा में यह 1000 घन मी० प्रतिवर्ष से भी अधिक है। इस प्रकार घरेलू उपयोग में हम केवल 3 प्रतिशत जल का उपयोग कर पा रहे हैं जबकि इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया, फ्रांस और कनाडा आदि देशों में यह उपयोग 5 गुना से भी अधिक है। लगभग ऐसी ही स्थिति औद्योगिक क्षेत्रों में भी पाई जाती है। दसवीं पंचवर्षीय योजना के अवधि में अर्थात् 2007 तक सभी गाँवों तक सुरक्षित पेयजल उपलब्ध कराने का तथा प्रदूषित बड़ी नदियों की सफाई का लक्ष्य रखा गया है। इस प्रकार निजी क्षेत्र तथा सरकार दोनों को ही पेयजल आपूर्ति, जल उपचार और प्राकृतिक संसाधन संरक्षण पर अधिक निवेश करना होगा।

जल संरक्षण से सम्बंधित सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर कार्य करने की जरूरत है। परम्परागत कुओं और तालाबों पर ध्यान देना, इनकी सफाई तथा नये कुओं की खुदाई करानी चाहिए क्योंकि नलकूपों तथा ट्यूबवेल के होने से इनका रख–रखाव कम हो गया है। किसानों से खाली स्थानों, सरकारी तथा गैर सरकारी भूमि पर वृक्षारोपण कराने से भूमि में उपस्थित नमी एवं जल का संरक्षण होता है। समुचित फसल चक्र का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। जल संरक्षण के लिए समाचार पत्रों, पत्रिकाओं तथा चलचित्रों के माध्यम से लोगों में जागरूकता उत्पन्न करने की जरूरत है जिससे लोग जल के व्यर्थ उपयोग को समझकर उसके संरक्षण में योगदान करें। इसी क्रम में फसलों की सिंचाई के लिए फौव्वारों का उपयोग करके जल संरक्षण किया जाता है। इसका सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि इससे फसलों में जो आवश्यक जल चाहिए वह इस विधि से प्राप्त हो जाता है। चौड़े पत्तों वाले पौधों को जलाशयों के किनारे लगाने से इनकी छाया के कारण जल संरक्षण किया जा सकता है।

तापमान की वृद्धि के कारण जल भण्डार में कमी तथा नई बीमारियों का उद्भव होने लगेगा और कृषि उत्पादन भी प्रभावित होगा, फिर वह जीवन स्वरूप जो बदलते पर्यावरण के साथ समयानुकूल अनुकुलन में असमर्थ होंगे और विलुप्त हो जायेंगे। इससे वनस्पतियाँ सबसे अधिक प्रभावित होंगी। पर्यावरण हर प्रकार के जीवन का आधार है, यह पेड़–पौधों और जीवों को जीवन देता है जो पीने योग्य वातावरण के साथ–साथ हमें जरूरत की सभी चीजें प्रदान करता है। हमारी वैज्ञानिक उन्नति, प्रौद्योगिक प्रगति,

आनुवंशिक–अभियांत्रिकी, कृषि तथा उद्योग आदि सभी का आधार प्राकृतिक संसाधन है। मानसून, प्रकृति एवं वैश्वीकरण की चुनौतियों ने भारतीय कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहे हैं, तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण कृषि भूमि में निरन्तर कमी आ रही है। हरित क्रांति के कारण कृषि योग्य भूमि में अधिकतम विस्तार हो चुका है। पिछले पचास वर्षों में भारत में कृषि योग्य भूमि में लगभग 15 गुना वृद्धि हो चुकी है, जिसमें और वृद्धि होने की संभावना बहुत ही कम है। ऐसे परिवेश में जल उपलब्धता को बढ़ा कर सूखा ग्रस्त क्षेत्रों में भूमि की उत्पादकता को बढ़ाकर कृषि उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है जिसके फलस्वरूप कृषि उत्पादन एवं जल प्राप्ति से औद्योगिक गतिविधियों को भी बल मिल सकता है, जिसके दूरगामी परिणाम होंगे।

*** शोध सहायक**
**** निदेशक**
बायोवेद शोध एवं प्रसार केन्द्र
103/42, मो0ला0ने0 मार्ग, इलाहाबाद

जीवनधारा के साथ अन्याय

भारत की वंशधारा गंगा की वंशधारा है। भारत की सभी वंश परंपराएँ गंगा जी से सिंचित और पालित पोषित हैं। भारतवासियों के लिए यह केवल एक नदी नहीं, माँ का आँचल और सदेह–सजीव वात्सल्य है, दैवी अस्तित्व है। हमारा लोकजीवन उससे माँगता है, लेता है, देता है और वह बिल्कुल माँ की तरह हमारा आश्रय है। जब गाँव के बालक गंगाजी में स्नान करने के लिए छलाँग लगाते हैं कौन किस मजहब और जाति का है, किसका क्या मतभेद है कोई सुनना–जानना तक नहीं चाहता। त्रिदेवों की त्रिपगथा की इस अमृतमयी धारा से उस घनीभूत एकात्मक संवेदनशील धर्म का बोध होता है जिसने कभी भी, किसी को भी नकारना नहीं सीखा जिसने पीरों–फकीरों को भी साधु–महात्माओं सा स्थान दिया। भारत का धर्मबोध किसी मत–मतान्तर, मतवाद, किसी एक ग्रंथ, किसी एक पैगम्बर और किसी एक नियम से बड़ी सत्ता है। इसके लिए विश्व का प्रत्येक अवयव ईश्वरमय है। ऐसा दूसरे ईश्वरीय मत वाले अर्थात् इस्लाम और ईसाई भी कह सकते हैं, किन्तु उनके व्यवहार में दूसरे ईश्वरीय मतों के प्रति अस्वीकृति है।

कितना दुखद है कि भागीरथी की धारा, जिसे आज के वैज्ञानिकों ने भी अमृत के रूप में पहचाना और माना है, लोकजीवन को सिंचित करने से वंचित की जा रही है। टिहरी का बाँध केवल टिहरी की ऐतिहासिक बस्ती के लिए ही घातक नहीं है, वह हमारे पूरे अस्तित्व को निगल जाने वाला दैत्य है। स्मरण रहे जिस धर्मबोध ने हमें और सम्पूर्ण प्राकृतिक अवदानों को रक्षित किया उससे वंचित किए जा रहे समाज को कानून का अम्बार नहीं बचा सकता। न केवल हमारे पूर्वजों ने अपितु ग्राम्य संस्कारों में रचे बसे लोगों ने भी गंगा माता से जन्म मरण के साथ जीवनपर्यन्त का सम्बन्ध आज भी जोड़ रखा है। गंगा से वंचित होकर हमारा अस्तित्व नहीं बच सकता। हमें हमारे समाज, राष्ट्र और सृष्टि का धर्मबोध था तो हम गंगा को गंदा करने में पापकर्म मानते थे। इससे हमारे जीवन में पावित्र्य, समरसता और समर्पण सहज हो जाता था। गंगा की धारा को अवरुद्ध करने का अर्थ और परिणाम विकास नहीं, विनाश, संस्कृति नहीं, विकृति, प्रकाश नहीं अंधकार, जीवन नहीं, मृत्यु, गर्वोज्ज्वल परम्पराओं का नहीं, पाप को प्रतिष्ठित और आमंत्रित करना है। गंगा पुरुषार्थ चतुष्टय अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और ज्ञान, कर्म, भक्ति, वैराग्य की प्रेरक विग्रह है। गंगा केवल एक नदी नहीं, भारतमाता का परिचय है, भारत का इतिहास है, त्रिकाल की प्रतिनिधि और महाकार का प्रसाद है। इसकी जलधारा से देश को वंचित करना देश का प्राण–हरण करना है।

साभार
दैनिक जागरण

एक भूवैज्ञानिक का पर्यावरण दर्शन : अपनी राम कहानी

शिवेन्द्र कुमार पांडे

मैं कोल इण्डिया लिमिटेड से अवकाश प्राप्त 'भूवैज्ञानिक' हूँ– उम्र 69 वर्ष। आज से 40 वर्ष पूर्व तक भारत में बहुत कम लोग जानते थे कि 'भूवैज्ञानिक' क्या बला होती है। दूर क्यों जाऊँ, अपनी ससुराल की ही बात बताता हूँ। मेरा विवाह 1960 में हुआ था।

भारत के प्रमुख तीर्थ व पर्यटन स्थल हरिद्वार व कनखल से तो आप सब परिचित होंगे। मेरी ससुराल कनखल के ईमाली मोहल्ले में है।

25 वर्ष पूर्व की बात है, तब मेरी सासुजी जिन्दा थीं और मेरी तीन छोटी सालियों का विवाह हो चुका था। उन सबके पति सरकारी विभागों में कार्य कर रहे थे– वन विभाग के डी.एफ.ओ, राज्य ट्रान्सपोर्ट में आर.टी.ओ. और प्रदेश शासकीय सेवा में सिटी मजिस्ट्रेट। आम जनता इन सभी पदनामों से भलिभाँति परिचित है और सर्वसाधारण भी इन पदों की गरिमा व महत्व को समझता है। मेरी सासूजी अपने सभी दामादों का परिचय उनके पदनामों से देती थीं, पर मेरा परिचय देने में उन्हें कुछ कठिनाई होती थी। मेरा परिचय होता था– 'कोयले में काम कर रहे हैं।'

इस परिचय से मेरी पत्नी को लगता था कि मुझे 'मलकट्टा' की संज्ञा से सुशोभित कर दिया गया, क्योंकि कोयला खान के श्रमिकों को इसी नाम से जाना जाता है। पर यह कोई अनहोनी बात नहीं है, सभी भूवैज्ञानिकों व उनकी पत्नियों को इस प्रकार के मधुर परिचय को झेलना पड़ता है।

साधारणतः एक भूवैज्ञानिक का कार्य भूसम्पदा खोज व भूविन्यास निर्माण के आधार पर अपनी व्याख्या प्रस्तुत करना होता है जिसके आधार पर विकास की खाक छाननी पड़ती है। इसलिए शहरों में वह अपनी पहचान खो बैठता है। फिर उसके कार्य से जनसाधारण का कोई लेन–देन भी नहीं होता, फलस्वरूप वह समाज में अपरिचित रह कर अपना सम्पूर्ण जीवन बिता देता है।

एक भूवैज्ञानिक, जब अपना कार्य समाप्त कर आगे बढ़ता है, उसके पश्चात् ही वहाँ मानव गतिविधियाँ बढ़ने लगती हैं, नये शहरों का जन्म होता है और नये उद्योग स्थापित होते हैं। लेकिन भूवैज्ञानिक को सब भूल जाते हैं क्योंकि वह नींव के पत्थर के समान, भव्य इमारत की आधारशिला मात्र है, जो निर्माण के पश्चात् दिखाई नहीं देती।

पर मुझे इस बात का कोई मलाल नहीं है। भूविज्ञान की पढ़ाई करते समय ही, मुझे अपने भावी कार्यक्षेत्र का ज्ञान हो चुका था। पर ऐसा भी नहीं है कि कार्य के दौरान एक भूवैज्ञानिक मानव सम्पर्क खो बैठता है। शहरों में न सही, अपने कार्यक्षेत्र के ग्रामवासियों से तो उसके बहुत नजदीक के संबंध स्थापित हो जाते हैं।

एक भूवैज्ञानिक होने के नाते, मैं अपने को भाग्यशाली समझता हूँ कि पिछले 45 वर्षों से मुझे असली भारत के दर्शन अनेकों बार बिहार, झारखण्ड, बंगाल, उड़ीसा, राजस्थान, अरुणाचल, मध्य प्रदेश, आन्ध्र, तमिलनाडु, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश आदि में कार्यरत होने पर हुए हैं,

क्योंकि असली भारत तो ग्रामों में ही बसता है।

भारतीय ग्रामीण व वन्य जीवन को नजदीक से देखने समझने का मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ है। इनके ही बीच, मैं अपनी पहचान ढूँढ पाया हूँ कि 'मैं कौन हूँ'।

मुझे अफसोस है, तो केवल इस बात का कि उन दिनों हमारे मध्य 'पर्यावरण व जीवन संरक्षण' के विषय में आज के समान जागरूकता नहीं थी। अन्यथा, शायद हमारे प्रक्षेपण कुछ भिन्न होते, फलस्वरूप वर्तमान पर्यावरण कुछ और सुरक्षित रहता।

वन्य जीवन की चर्चा से याद आया कि कुछ दिनों पूर्व मेरे मन में एक विचार उठा था, प्रस्तुत है–

जंगली व्यवहार– एक विरोधाभास

पेशे से मैं एक भूवैज्ञानिक हूँ,
पर्यावरण में रुचि रखता हूँ,
दूरदराज के इलाकों में घूमा हूँ,
जंगल जंगल भटकता रहा हूँ।
मैंने प्रकृति के आयाम को समझा है,
जंगली जीवों के रीति–रिवाजों को देखा है।
सभी जीव परहित में बिताते जीवन,
सभी करते प्रकृति के नियम पालन।
छोटे बड़े सभी का है, यह सामान्य व्यवहार,
वनस्पतियाँ तो हैं, सबकी पालनहार।
भूख लगने पर ही करते ये शिकार,
जमाखोरी तो है, मानव का विकार।
इस पर भी, जब कहीं होता अत्याचार,
हम सब कहते हैं, यह है जंगली जानवर।
मैं हँसने लगता हूँ,
भूवैज्ञानिक जो हूँ।

छवि निकुंज, बांस बंगलो कम्पाउण्ड
चौथी क्रासिंग, राँची रोड
पुरूलिया-723101

वर्ष 2004 'वैज्ञानिक जागरूकता वर्ष' घोषित

भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने वर्ष 2004 को 'वैज्ञानिक जागरूकता वर्ष' के रूप में मनाने की घोषणा की है।

इसके अंतर्गत सारे देश में विज्ञान चेतना यात्राएँ निकालकर जनसामान्य तक विभिन्न वैज्ञानिक जानकारियाँ पहुँचाने का प्रयास किया जाएगा। स्वास्थ्य, पोषण एवम् स्वच्छता आदि इन यात्राओं के प्रमुख विषय रहेंगे। इसके अतिरिक्त सूचना प्रौद्योगिकी, आपदा प्रबन्धन, जैवविविधता, पर्यावरण आदि महत्वपूर्ण विषयों के प्रति जागरूकता उत्पन्न किये जाने के प्रयास होंगे। कुल चार विज्ञान चेतना यात्रा जत्थे सारे देश के सभी राज्यों से होते हुए गुजरेंगे।

इनके अतिरिक्त सारे देश में लोकप्रिय व्याख्यान, पोस्टर, विज्ञापन, विज्ञान मेला, फिल्म, लोककला आदि विविध माध्यमों द्वारा जन जन को विज्ञान के प्रति जागरूक किये जाने की योजना है।

इसी संदर्भ में 28 से 30 मई 2003 तक लखनऊ के सी.एम.एस. डिग्री कालेज में राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् नई दिल्ली ने 'विकास' इलाहाबाद के सहयोग से विज्ञान संचार के क्षेत्र में काम कर रही देश भर की 150 से अधिक संस्थाओं की एक कार्यशाला का आयोजन किया। इस कार्यशाला में 2004 में आयोजित किये जाने वाले विभिन्न कार्यक्रमों पर चर्चा की गई तथा संस्थाओं से सुझाव माँगे गये।

विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रधानमंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र तथा शोध सहायक देवव्रत द्विवेदी ने भी इस कार्यशाला में भाग लिया तथा मीडिया प्रबंधन, साफ्टवेयर निर्माण तथा प्रलेखन विषयक उपसमूह में विचार विमर्श किया।

– देवव्रत द्विवेदी

सावधान! सार्स आ गया है

इरफान ह्यूमन

हाल में फैला एक रोग है 'सीवियर एक्यूट रिसपाइरेटरी सिंड्रोम' यानी सार्स, जो रहस्यमय निमोनिया के नाम से भी जाना जा रहा है और दुनिया में आतंक का पर्याय बना हुआ है। यदि देखा जाए तो इस रोग ने चीन में पिछले वर्ष नवम्बर माह से ही अपने पैर पसारने शुरू कर दिए थे, लेकिन इसका खुलासा तब हो पाया जब रोग बेकाबू हो गया। इस संबंध में जब वहाँ के अधिकारियों से पूछा गया तो उन्होंने बताया कि चीन के कानून में संक्रामक रोगों के बारे में जानकारी देना मना है। विश्व स्वास्थ्य संगठन यानी डब्ल्यू.एच. ओ. का मानना है कि यह रोग ग्वांगदोंग प्रांत से निकला है और धीरे धीरे हांगकांग, सिंगापुर, वियतनाम, कनाडा और अमेरिका आदि में फैला है।

सार्स प्रभावित क्षेत्रों में अब तक लोगों की मौत हो चुकी है जबकि से अधिक लोग प्रभावित हुए हैं और प्रतिदिन नए मामले प्रकाश में आ रहे हैं। अभी तक किसी भी देश के वैज्ञानिक इस रोग का इलाज नहीं खोज पाए हैं। सार्स ने डब्ल्यू.एच.ओ. के डॉ0 कार्लो अबार्नी को भी मौत की नींद सुला दिया है, जिन्होंने हनोई में गंभीर श्वास रोगों से पीड़ित एक रोगी की पहचान रहस्यमयी निमोनिया के रोगी के रूप में की थी।

आज पूरे विश्व में तेजी से रहस्यमय निमोनिया के रोगियों की संख्या बढ़ती जा रही है। अकेले हांगकांग में इस बीमारी से मरने वालों की संख्या सैकड़ों हो गई है और इससे पीड़ित हजारों लोग अपना इलाज करा रहे हैं। उधर कनाडा ने माना है कि उसके देश में रोगियों की संख्या 232 पहुँच गई है। ब्राजील में पहली बार रहस्यमय निमोनिया का एक संदिग्ध मामला प्रकाश में आया है।

उधर भारत में दावा किया जा रहा है कि अब तक वह सार्स से बचा हुआ है, हालाँकि गोवा में सार्स जैसे लक्षणों से मिलता जुलता एक और रोगी प्रकाश में आया है, जो हांगकांग व सिंगापुर के रास्ते गोवा पहुँचा था। 32 वर्षीय इस युवक में सार्स जैसे लक्षण मिलने के बाद उसे वहाँ के अस्पताल में भर्ती कराया गया है। एक्स–रे के आधार पर उस रोगी का इलाज कर रहे डाक्टरों ने बताया है कि यह मामला सार्स से अलग है, फिर भी एहतियात के तौर पर उसके रक्त को परीक्षण के लिए भेजा गया है। यह मामला प्रकाश में आने के बाद यदि देखा जाए तो भारत में संबंधित रोगियों की संख्या 6 पहुँच गई है। बाकी रोगी दिल्ली, हैदराबाद, कोचीन, कोलकाता व निकोबार में इलाज करा रहे हैं।

आखिर कौन है कारक ?

वैज्ञानिक अनुमानों के अनुसार सार्स का जनक विषाणु कोरोना अथवा पैरामिक्सो परिवार का है, लेकिन चीनी वैज्ञानिक क्लामाइडिया को इस रोग का एक प्रमुख कारक मानते हैं। सीवियर एक्यूट रिसपाइरेटरी सिंड्रोम के मामलों में चीनी वैज्ञानिकों ने लगातार इसकी उपस्थिति देखी है। अध्ययनों से अब इस बात की संभावना है कि किसी अन्य कारक के साथ जीवाणु ही इसके लिए जिम्मेदार हो सकते हैं। चीन के सेंटर फार डिजीज प्रिवेंशन एण्ड कंट्रोल के निदेशक ली लिमिंग ने

बताया कि चीनी वैज्ञानिक जिस जीवाणु पर अपना ध्यान केंद्रित कर रहे हैं वह क्लामाइडिया जैसा अथवा उसका उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) है। चीन के वैज्ञानिक सार्स के कारक स्रोत के बारे में जानकारी करने के लिए जानवरों पर परीक्षण कर रहे हैं। हांगकांग मेडिकल यूनिवर्सिटी के एक शोधकर्ता दल का मानना है कि सार्स का कारण नये कोरोना विषाणु हैं। ये विषाणु एक दूसरे से खाँसी, छींक, और अस्थाई सम्पर्क के माध्यम से फैल रहे हैं। इस दल में शामिल शोधकर्ता प्रोफेसर युन कोक यांग का कहना है कि यह विषाणु मानव और पशु शरीर में समान रूप से अपना काम करता है। ये विषाणु मानव और पशु शरीर के बाहर तीन घण्टे तक जीवित रह सकता है। हांगकांग के ही एक अन्य शोधकर्ता दल ने दावा किया है कि यह विषाणु पैरामिक्सोवायरस परिवार का है जिसे साधारण भाषा में वायरल परिवार के रूप में जाना जाता है। विशेषज्ञों के अनुसार जिन रोगियों में बीमारी के पूरे लक्षण उभर आए हों वे ज्यादा खतरनाक नहीं होते हैं क्योंकि उनसे बचने के उपाय किए जा सकते हैं, लेकिन इस बीमारी से पीड़ित व्यक्ति के शुरुआती लक्षण जब स्पष्ट नहीं हो पाते तो उससे बचाव भी मुश्किल होता है और इस तरह अनजाने में ही एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को संक्रमण तेजी से फैलता है।

विशेषज्ञों के अनुसार रहस्यमय निमोनिया के बारे में जो राय उभर कर सामने आ रही है उससे लगता है कि यह ठण्ड से फैलने वाला विषाणु है जो पीड़ित व्यक्ति के सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति को भी अपनी चपेट में ले लेता है। लेकिन बीमारी के बारे में यह राय प्रतिदिन बदल रही है। हांगकांग के रिहाइशी इलाकों में रहने वाले लोगों से प्राप्त जानकारी के अनुसार यह बीमारी किसी और कारण से फैल रही है। इस संबंध में डब्ल्यू.एच.ओ. का मानना है कि पर्यावरण में कुछ ऐसा हो रहा है कि जो इस बीमारी के संक्रमण फैलाने में सहायक साबित हो रहा है। यह बीमारी संक्रमित व्यक्ति के पास रहने के साथ हवा के माध्यम से भी तेजी से फैल रही है।

रोग के कारक को लेकर भले ही अलग–अलग राय हो लेकिन अधिकांश वैज्ञानिक रहस्यमय निमोनिया के लिए कोरोना विषाणु को इसका जिम्मेदार मान रहे हैं। चूँकि इलेक्ट्रानिक सूक्ष्मदर्शी से देखने पर इस विषाणु की संरचना मुकुट यानी क्राउन जैसी दिखती है, अतः इसी आधार पर इसका नाम कोरोना विषाणु पड़ा। कोरोना विषाणु स्वस्थ मनुष्य की कोशिका पर हमला कर अपना कवच बाहर छोड़ स्वयं कोशिका में प्रवेश कर जाता है और अपने विषाणुजनित तत्व कोशिका में घोल देता है। अब चालाक विषाणु आधार कोशिका की पूरी संरचना को बदलते हुए अपने को बहुगुणित करता है। विषाणु के नए कण तेजी से आधार कोशिका में अपनी संख्या बढ़ाते हैं। अंततः कोशिका मर जाती है और विषाणु कण कोशिका को फोड़ कर बाहर निकल आते हैं और दूसरी स्वस्थ कोशिकाओं को अपना शिकार बनाते हैं।

रहस्यमय निमोनिया इन्फ्लुएंजा से ज्यादा संक्रामक है। इसके लक्षणों को प्रकट होने और बीमारी के फैलने में दो से सात दिन का समय लगता है। रोगी को तेज बुखार का होना रहस्यमय निमोनिया का पहला लक्षण माना जाता है। रोगी तेज बुखार के साथ बलगमरहित सूखी खाँसी की भी शिकायत करता है। इसके साथ ही उसे साँस लेने में तकलीफ़ होती है। इस रोग के संभावित लक्षणों में सिरदर्द, शरीर का अकड़ना, भूख न लगना, अनिश्चितता की स्थिति, शरीर पर छोटे छोटे दाने होना और डायरिया आदि हैं। लगभग एक सप्ताह के बाद 80 से 90 प्रतिशत संक्रमणग्रस्त व्यक्तियों में धीरे धीरे सुधार होने लगता है लेकिन शेष 10 से 20 प्रतिशत रोगियों में श्वांस संबंधी समस्या गम्भीर रूप धारण कर लेती है और उनकी मृत्यु की संभावना बढ़ जाती है। 40 वर्ष से अधिक उम्र के रोगियों में श्वास संबंधी जटिलताओं की संभावना अधिक रहती है। अभी तक के आँकड़ों के अनुसार संक्रमणग्रस्त लगभग 4 प्रतिशत रोगियों की मृत्यु हो जाती है।

सार्स के रोगी को चिकित्सालय में भर्ती कर एकांत में रखा जाता है और लाक्षणिक उपचार के साथ

साथ राइबाबिरिन और ओस्टेल्टामिविर जैसी विविध एण्टीवायरल औषधियाँ और स्टेरॉयड्स की मदद ली जाती है। गम्भीर श्वसनावरोध की दशा में वेन्टीलेटर की मदद ली जाती है। डब्ल्यू.एच.ओ. ने सार्स के उपचार के निदान परीक्षण विकसित करने का दावा किया है। संगठन के वायरल विशेषज्ञ डॉ0 क्लाउस स्टाहयर के अनुसार प्रभावित व्यक्ति की कोशिका कल्चर द्वारा बीमारी के कारण का पता लगाया जा सकता है। अभी तक इसका परीक्षण बहुत कम लोगों पर किया गया है। उधर अप्रैल माह के तीसरे सप्ताह में सार्स विषाणु का आनुवंशिक क्रम मालूम कर लेने का दावा करते हुए हांगकांग विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने कहा है कि उनका विश्वास है कि यह बीमारी जानवरों से इंसान में फैलती है। विश्व में विभिन्न स्थानों पर सार्स के विरुद्ध अनुसंधान और शोधकार्य युद्धस्तर पर जारी है।

रहस्यमय निमोनिया एक संक्रामक बीमारी है, इसके बचाव के लिए संक्रमित रोगी के संपर्क में आने से बचें अथवा रोगी से समुचित दूरी बनाए रखें। इसके बचाव में स्वच्छता का भी महत्व है अतः अपने आस पास के वातावरण को स्वच्छ रखें, संदिग्ध वस्तु या व्यक्ति को छूने के बाद तुरन्त साबुन से हाथ धोएँ, अधिक भीड़भाड़ भरे स्थानों पर जहाँ तक हो बचें, जहाँ रोग फैलने की आशंका हो वहाँ मास्क का अवश्य प्रयोग करें।

संपादक
साइंस टाइम्स न्यूज़ एण्ड व्यूज़
रिसर्च, 67 अन्टा,
शाहजहाँपुर-242001

ओजोन क्षरण - एक चेतावनी

ओजोन क्षरण हमारे देश की नहीं बल्कि पूरे विश्व की विकट समस्या हो गई है। 16 सितम्बर 2000 को ओजोन संरक्षण दिवस ओजोन के प्रति जागरूकता एवं राष्ट्रों को उत्तरदायित्व बोध कराने के लिए मनाया गया। इससे 16 सितम्बर 1987 (मांट्रियल सहमति) की स्मृतियाँ ताजा हो गईं।

ओजोन परत क्षरण : ओजोन परत की मोटाई मापने की इकाई 'डाबसन' है। ओजोन परत की औसत मोटाई 230 डाबसन है। पृथ्वी की भूमध्य रेखा पर ओजोन परत पतली परन्तु ध्रुवों पर सबसे मोटी है। ओजोन परत की औसत मोटाई में हो रही कमी एवं कुछ स्थानों पर ओजोन परत के पूरी तरह नष्ट होने के तीन प्रमुख कारण हैं। प्रथम 75 से 80 प्रतिशत ओजोन क्षरण के लिए मानव जनित प्रदूषण जिम्मेदार है। 15 से 20 प्रतिशत के लिए प्राकृतिक रासायनिक क्रियाएँ। तृतीय शेष के लिए ज्वालामुखी घटनाएँ जिम्मेदार हैं।

1985 में ब्रिटिश वैज्ञानिक जोसेफ फारमन ने यह पुष्टि की कि अटार्कटिका पर ओजोन परत पतली ही नहीं हो रही है बल्कि वहाँ ओजोन छिद्र बन रहे हैं। स्वाभाविक सा प्रश्न है अंटार्कटिका जैसे साफ सुथरे वातावरण में यह क्षरण क्यों हो रहा है। इसके तीन कारण हैं। प्रथम, ODS का वायुमंडलीय पवनों द्वारा ध्रुवों पर पहुँचना। द्वितीय अंटार्कटिका का ओजोन क्षरण हेतु अनुकूलतम तापमान -105 से -110^0C है और अंटार्कटिका में -92^0 C है के आसपास तापमान रहता है।

तृतीय, कम तापमान पर क्लोरीन के साथ क्रिया करने वाले अन्य पदार्थों का निष्क्रिय हो जाना।

वैश्विक प्रयास : ओजोन परत को रोकने सम्बन्धी अंतर्राष्ट्रीय प्रयास 1985 का वियना सम्मेलन था। इसके बाद लक्ष्यबद्ध कार्यक्रम का निर्धारण कनाडा के मांट्रियल सम्मेलन प्रोटोकाल में कोपेन हेगेन (1992) में हुआ। संशोधन के बाद यह तय हुआ कि विकसित देश 2000 तक तथा विकासशील देश 2010 तक ODS उत्सर्जन को नियंत्रित करने हेतु "Ozone Depleting law 2000" बनाया है, जिसके तहत 2003 तक CFC का प्रयोग व 2015 तक मिथाइल ब्रोमाइड का प्रयोग बन्द होना है।

प्रवीण कुमार दूबे

जीनोम विज्ञान : सफलताएँ और संभावनाएँ

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

एक बार यह ज्ञात हो जाने के बाद कि एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में गुणों के वाहक 'जीन' (Genes) होते हैं, जीव विज्ञान के क्षेत्र में एक सर्वथा नई क्रांति का सूत्रपात हो गया। इस प्रकृति में मानव ही केंन्द्रबिन्दु रहा है, अतएव अपने विषय में अधिक से अधिक जानने की उत्सुकता भी मानव में सदैव से रही है। आज हम ज्ञान–विज्ञान के जिस शिखर पर पहुँच गये हैं वहाँ मानव की कुण्डली को लगभग पढ़ लिया गया है। यही नहीं, इससे एक नए विज्ञान 'जीनोमिक्स' (Genomics) या दूसरे शब्दों में कहें तो मानव जीनोम विज्ञान की स्थापना हो चुकी है।

आज स्थिति यह है कि मानव शरीर के डी.एन.ए. में पाये जाने वाले 30,000 जीनों में से 85 प्रतिशत जीनों को पढ़ लिया गया है और उन्हें व्याख्यायित भी कर लिया गया है। ऐसा लगने लगा है कि अब वह दिन दूर नहीं जब सारे मानवीय क्रियाकलापों को मानव जीनों के अनुसार निर्धारित किया जा सकेगा। उदाहरण के लिए संभावित रोगों का पता लगाया जा सकता है, विवाह के लिए वर–कन्या के जीनों की जाँच–परख की जायेगी, जीवनबीमा कम्पनियाँ जीनों के अध्ययन के बाद ही बीमा करेंगी आदि आदि।

किन्तु कहने सुनने में इस तरह की बातें जितनी सरल और सुलभ लगती हैं, वास्तव में ऐसा है नहीं। अभी दिल्ली दूर है। वास्तविकता तो यह है कि मानव जीनोम का विश्लेषण करने में वर्तमान शती का पूरा समय लग जायेगा। यह मत किसी ऐरे–गैरे नत्थू खैरे का नहीं, विषयविशेषज्ञों का है। क्रेग वेण्टर महोदय सेन्टर फॉर द एडवांसमेन्ट ऑव जीनोमिक्स के वर्तमान अध्यक्ष और 'सेलेरा जीनोमिक्स' के पूर्व संस्थापक अध्यक्ष हैं। इन्होंने अमेरिकी सरकार के ह्यूमन जीनोम प्रोजेक्ट से त्यागपत्र देने के बाद एक निजी कम्पनी की स्थापना की है। इस कम्पनी ने अपना ध्यान जीनोम अनुक्रम तैयार करने के कार्य पर केन्द्रित कर रखा है। क्रेग वेण्टर महोदय का मानना है कि मानव कुण्डली अर्थात् समस्त जीनों के अध्ययन के बाद भी आदमी के विषय में सब कुछ जान सकना संभव नहीं होगा, क्योंकि शरीर में विद्यमान जीनों के अतिरिक्त भी हम कुछ और भी हैं। यहाँ जुड़वाँ बच्चों के उदाहरण से इस बात को समझना अपेक्षाकृत आसान होगा। यद्यपि जुड़वाँ (समरूप यमज) में आनुवंशिक कूट एक जैसे होते हैं, फिर भी वे जुड़वाँ दो पूर्णतः अलग व्यक्ति होते हैं। उनके व्यक्तित्व भिन्न होते हैं और उनकी उपलब्धियाँ भी भिन्न होती हैं। इस संदर्भ में विश्वप्रसिद्ध सियामी (स्यामी) जुड़वों के उदाहरण तो सर्वविख्यात हैं। जीन जीवन के महत्वपूर्ण घटक तो हैं, फिर भी मानव जीवन को निश्चित नहीं कर सकते हैं।

हाँ, एक क्षेत्र ऐसा है जिसमें मानव जीनोम के अध्ययन से संभावनाओं के अनेक द्वार खुलते नजर आ रहे हैं और यह क्षेत्र चिकित्सा का है। चिकित्सा के क्षेत्र में अपार संभावनाएँ हैं।

मानव जीनोम प्रोजेक्ट इन दिनों आधारभूत अनुसंधान में मूलाधार परिवर्तन कर रहा है। आनुवंशिक सूचना वह कुंजी है जिससे जटिल शारीरिक क्रियाओं को समझने के बाद कैंसर जैसे असाध्य रोगों के विषय

में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। आज हम जीनों की गतिविधियों के अध्ययन में प्रयासरत हैं और यह भी ज्ञात कर रहे हैं कि विभिन्न प्रकार के जीन एकसाथ किस तरह का व्यवहार करते हैं। फिर हमारे लिए यह सहज हो जायेगा कि हम उनके व्यवहार में कहाँ हस्तक्षेप करें। 1995 में पहली बार प्रथम जीनोम की खोज के बाद से चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में तेज़ी से प्रगति हुई है। मानव जीनोम अनुक्रम की खोज को अभी मात्र दो वर्ष ही हुए हैं, किन्तु इस थोड़े समय में ही अनेक अनुसंधानशालाओं की कार्यशैली में तेज़ी से परिवर्तन हुए हैं। अनेक रोगों की पहचान के नए तरीके ईजाद कर लिए गए हैं। दवा बनाने वाली कम्पनियाँ नए टीकों (वैक्सीनों) की खोज में जुटी हैं और उपचार के नए तरीके ढूँढे जा रहे हैं।

औषधि उद्योग का भविष्य आशापूर्ण है। दवा बनाने वाली कम्पनियाँ जीनोम विज्ञान की सहायता ले रही हैं। इससे एक बात जो स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आती है वह यह है कि पुरानी दवाओं के स्थान पर निश्चित रूप से नई दवाइयाँ निर्मित की जायेंगी। ये नई दवायें पुरानी दवाइयों की अपेक्षा अधिक प्रभावी और सस्ती भी होंगी। साथ ही भविष्य में रोगों का मँहगी दवाओं से उपचार करने की अपेक्षा रोगों की रोकथाम पर अधिक बल दिया जायेगा।

इस प्रश्न के उत्तर में कि क्या भविष्य में कभी विश्व रोगमुक्त हो जायेगा ? क्रेग वेण्टर का कहना है कि ऐसा सोचना बहुत दूर का सपना है। फिर भी मलेरिया, क्षयरोग, कालरा, कैंसर और हृदय रोगों पर अगले 15 वर्षों में विजय प्राप्त कर ली जायेगी, इस बात का जीवविज्ञानियों को पूर्ण विश्वास है। साथ ही साथ हमें कुपोषण की समस्याओं पर विशेष ध्यान देना होगा और अन्नोत्पादन बढ़ाना होगा। यह अपेक्षा करना कि जीन अनुक्रम के पूर्ण अनुवाद के बाद अलग–अलग व्यक्तियों के लिए अलग–अलग दवाइयाँ उनके जीनोम के आधार पर तैयार कर ली जायेंगी, यह तो संभव नहीं होगा, फिर भी व्यक्ति के जीनोम के अनुसार खानपान में परिवर्तन और जीवन जीने की कला में बदलाव से संभावित रोग की चपेट में आने से बचा जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि आनुवंशिक कूट के पढ़ने से कैंसर होने की आशंका है तो उचित भोजन, व्यायाम और काफी पहले ही रोग की जाँच से कैंसर से बचा जा सकेगा। इस प्रकार रोगों से बचने के हर संभव प्रयास किए जा सकेंगे। किन्तु सब कुछ औषधि से ही संभव हो सकेगा, ऐसा सोचना भूल होगी।

इतिहास साक्षी है कि जब भी कोई नया अनुसंधान– क्रांतिकारी अनुसंधान– सामने आया है तो उसकी सफलता और विफलता को लेकर विवाद उठ खड़े हुए हैं। लोग उसे आसानी से स्वीकार नहीं करते। फिर अनेक भ्रांतियाँ भी जन्म लेती हैं। किसी भी नयी जानकारी और नए अनुसंधान में ऋणात्मक और धनात्मक दोनों प्रकार की क्षमताएँ होती हैं। सिक्के के दोनों पहलू सामने आते हैं। किन्तु यह सब कुछ सभ्य, विकसित मानव समाज के विवेकपूर्ण निर्णय पर निर्भर है। हमें क्या ग्रहण करना चाहिए और क्या छोड़ना चाहिए इसका निर्णय मानवीय संवेदना, सूक्ष्म तार्किक विश्लेषण और सुदीर्घ अनुभव के आधार पर ही किया जा सकता है। मानव जीनोम प्रोजेक्ट के अंतर्गत जो भी अनुसंधान कार्य किए जायें वे सभी मानव कल्याण के लिए होने चाहिए। स्मरण रहे जीन रसायन हैं, जीवन नहीं। जीवन जीने की कला तो हमें स्वयं विकसित करनी होगी।

भारत में मानव जीनोम अध्ययन का भविष्य उज्ज्वल है। आज साफ्टवेयर और सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में भारत की गणना अग्रणी देशों में है। इसके उपयोग से भारत जीनोम विज्ञान के क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त कर सकता है क्योंकि जीनोम विज्ञान कम्प्यूटर और सूचना प्रौद्योगिकी पर ही आधारित है। बस, आवश्यकता है लगन और विवेक के साथ लक्ष्य की ओर बढ़ते रहने की।

अनुकम्पा
वाई II सी. 115/6
त्रिवेणीपुरम, झूँसी, इलाहाबाद

बंगला में लोकप्रिय विज्ञान लेखन

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

1800 ई० में अंग्रेजों ने कलकत्ता में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना करके देश में विज्ञान की शिक्षा के सम्बन्ध में अपनी उत्सुकता दिखाना प्रारंभ किया। फलतः बंगाल के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति इस ओर उन्मुख हुए। सर्वप्रथम 1843 में देवेन्द्रनाथ टैगोर ने 'तत्वबोधिनी पत्रिका' का प्रकाशन प्रारम्भ किया और श्री अक्षय कुमार दत्त को इसका सम्पादक बनाया जिन्होंने 12 वर्षों तक इसका सम्पादन किया। इस पत्रिका में अन्य विषयों के साथ विज्ञान के लेखों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता रहा। किन्तु विज्ञान के प्रचार में श्री राजेन्द्र लाल मित्र (1824–1891) का योगदान अग्रणी माना जाता है। वे मूलतः पत्रकार थे। उन्होंने 1851 में 'विविधार्थ संग्रह' नामक समाचार पत्र का सम्पादन शुरू किया। तत्पश्चात् 1863–1866 तक 'रहस्य सन्दर्भ' नामक एक अन्य पत्र का भी सम्पादन किया। वे इन दोनों पत्रों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी विषयक लेख छापते रहे। उनका मानना था कि साइंस का ज्ञाता हुए बिना भी विज्ञान लेखन किया जा सकता है। वे 'तत्वबोधिनी पत्रिका' के भी परामर्शदाता रहे। उनके समय में बंग दर्शन (1872) नामक एक अन्य समाचार पत्र भी छप रहा था। उन्होंने 1854 में 'प्राकृत भूगोल' और 1871 में 'बंगाल एटलस' नामक ग्रंथ लिखे। वे भूगोल के अध्यापन में नक्शे (एटलस) पर बल देते रहे। उन्होंने अनेक पारिभाषिक शब्द गढ़े। मैप (map) के लिए 'मानचित्र' शब्द उन्हीं का गढ़ा हुआ है। उन्होंने 1856–57 में 'फोटोग्राफी' विषय को शिक्षण में मान्यता दिलाई। 1874 में उन्होंने पारिभाषिक शब्दों के गढ़ने के लिए कुछ मूलभूत सिद्धान्त भी सुझाए।

उनके बाद बंगला में जिस एक व्यक्ति ने लोकप्रिय विज्ञान लेखन को सशक्त बनाया वे थे श्री रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी। उनका जन्म 1864 में हुआ था और मृत्यु 1919 में हुई। वे भौतिकी तथा रसायन के अध्यापक थे। वे 20 वर्ष की आयु से ही 'नवजीवन' समाचार पत्र में लिखने लगे थे। इसमें 1885 में उनका महत्वपूर्ण निबन्ध 'जड़ जगतेर विकास' छपा। 1886 में 'सृष्टि तत्व' भी बहु विज्ञापित हुआ। बाद में यही लेख 'सौर जगतेर उत्पत्ति' शीर्षक से ग्रन्थावली में संकलित कर दिया गया।

त्रिवेदी जी ने भौतिक विज्ञान पर एक पाठ्य पुस्तक लिखी जिसमें जड़ जगत, जड़ेर तीन अवस्था, आयतन ओ आकृति, परिमाण, समस्या, कठिन पदार्थ, तरल पदार्थ, अनिल, स्थितिस्थापकत्व, मध्याकर्षण, जड़ कारण के बल, तड़ित, प्राकृतिक नियम, अबेक्वन और परिवर्तन जैसे अध्याय थे।

इनकी अन्य पुस्तकें हैं– जगत कथा (1919), जिगमस (1904) तथा प्रकृति (1894)।

रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी के शिष्य जगदानन्दराय ने इन्हें बंगला में विज्ञान लेखन का अनुभवी तथा योग्य अध्यापक बताया है। वे कम पढ़े लिखे तथा सुशिक्षित दोनों स्तर के बंगालियों के समक्ष विज्ञान के आनन्द को प्रस्तुत करना चाह रहे थे जिसमें वे सफल भी हुए। वे 1885 से अगले 25 वर्षों तक विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में

लगातार लिखते रहे। 'नवजीवन' के अतिरिक्त जिन सामयिक पत्रों में उन्होंने लिखा वे थे– साहित्य साधना तथा भारती। इनके अतिरिक्त वे बंग दर्शन, आर्यावर्त, पुण्य तथा प्रदीप में भी लिखते रहे। उन्हें उच्चकोटि का निबन्धकार तथा साहित्यकार कहा गया है। इनके कुछ निबन्धों के शीर्षक इस प्रकार हैं– जड़जगतेर विकास (1885), सृष्टि तत्व (1886), अति प्रकृति (1893) (1904), प्राचीन ज्योतिष (1894), फलित ज्योतिष (1899), प्राकृत सृष्टि (1894), पंचभूत यूक्लिड ज्यामिति, विद्युत चुम्बकीय तरंगें, पृथ्वी की आयु, सातत्य, परमाणुवाद, उत्तापेर अपचय (Thermodynamics)।

1987 में विनय भूषण राय ने 'उन्नीस शतकेर बांग्ला विज्ञान साधना' पुस्तक में त्रिवेदी जी के कार्य का उल्लेख किया है। किन्तु उनकी समस्त रचनाओं का संकलन एवं सम्पादन बन्दोपाध्याय तथा दास द्वारा 'रामेन्द्र रचनावली' नाम से बंगीय साहित्य परिषद् द्वारा 1965 में किया गया। उसमें कुल 288 पृष्ठ हैं। यही नहीं, रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी की सौवीं वर्षगांठ पर 'आचार्य रामेन्द्र सुन्दर शत वार्षिकी स्मारक ग्रन्थ' का भी प्रकाशन 1973 में कलकत्ते से श्री कुमार वन्द्योपाध्याय के सम्पादकत्व में हुआ। कुछ वर्षों पूर्व 1993 में साहित्य अकादमी ने श्री रामतोष सरकार द्वारा लिखित 'रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी' नामक पुस्तिका भी प्रकाशित की है।

इस तरह बंगला के यशस्वी लोकप्रिय विज्ञान लेखक रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी को बंगाल के भद्र लोक ने सर आँखों पर लिया है। दुर्भाग्यवश हिन्दी वालों ने अभी तक अपने किसी भी प्रारम्भिक हिन्दी लोकप्रिय विज्ञान लेखक के विषय में इस प्रकार का न तो कोई ग्रन्थ निकाला है, न ही अभी कोई योजना है। यदि श्री लक्ष्मी शंकर मिश्र तथा महेश चन्द्र सिन्हा के कृतित्व का आकलन किया जाए तो वह रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी जितना ही विशद और महत्वपूर्ण है। काश ! कोई संस्था यह कार्य सम्पन्न कर पाती। इससे हिन्दी में विज्ञान लेखन की परम्परा उजागर होगी।

यहाँ पर महेन्द्र लाल सरकार के कार्यकलापों का उल्लेख आवश्यक है। उन्होंने 1876 में Indian Association for the Advancement of Science की स्थापना की जिसके कारण चन्द्रशेखर वेंकटरामन, मेघनाद साहा (1893–1950) तथा एस.एन. बोस (1894) जैसी प्रतिभाओं को मौलिक चिन्तन एवं शोधकार्य करने का सुअवसर प्राप्त हो सका।

उन्नीसवीं सदी के अन्तिम वर्षों (1897) में 'डान मैगजीन' में भी विज्ञान विषयक लेख छपने लगे थे।

बंगाल की धरती अनेकानेक प्रतिभाओं की जन्मदात्री रही है। विज्ञान को जन जन तक पहुँचाने के लिए विज्ञान लेखन एवं लोकप्रियकरण की परम्परा बीसवीं सदी से विधिवत् चल रही है। इस परम्परा में जगदानन्द राय, आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय, जगदीश चन्द्र बोस तथा सत्येन्द्रनाथ बोस के नाम अग्रणी हैं। सुप्रसिद्ध विज्ञानी मेघनाद साहा अंग्रेजी के पक्षधर बने रहे किन्तु सत्येन्द्र नाथ बोस को बंगला में ही विज्ञान विषयक अध्यापन करने में कोई लज्जा का अनुभव नहीं हुआ। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद (1948 में) उन्होंने 'बंगीय विज्ञान परिषद' की स्थापना की। 'ज्ञान ओ विज्ञान' नामक बंगला पत्रिका का प्रकाशन यहीं से प्रारम्भ किया जो आज भी प्रकाशित हो रही है। वे प्रवासी, सबुज पत्र, परिचय आदि पत्रिकाओं में भी विज्ञान लेखन करते रहे। ज्ञात हो कि बंकिमचन्द्र तथा विश्वकवि रवीन्द्र नाथ टैगोर भी बंगला में विज्ञान लेखन के पक्षधर बने रहे।

विज्ञान लोकप्रियकरण अभियान में राष्ट्रीय भावना ही मुख्य प्रेरक शक्ति रही है। बंगाल के अतिरिक्त दिल्ली तथा पंजाब में भी उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में विज्ञान के लोकप्रियकरण की लहर फैल चुकी थी। पंजाब में अकेले रुचिराम साहनी ने पंजाबी में सैकड़ों व्याख्यानों के द्वारा विज्ञान को जन जन तक पहुँचाया। उन्होंने बंगाल में रहकर ही राष्ट्रीयता का वह पाठ सीखा था। उसके बाद प्रो. पूर्णसिंह भी पंजाबी में लिखते रहे किन्तु दुर्भाग्यवश उनके पश्चात् पंजाब में

शेष पृष्ठ 31 पर ...

लीडार का विकास एवं उपयोग

एम.पी. यादव

लीडार (लाइट डिटेक्शन एण्ड रेंजिंग) एक ऐसी प्रणाली है जिसमें प्रकाश की किरणों का प्रयोग दूरवर्ती विघटित परास (Range resolved remote) के मापन में किया जाता है। लीडार से एक प्रकाश किरण उत्सर्जित होती है जो अध्ययन की जाने वाली वस्तु अथवा मायध्म से अन्तरक्रिया करती है जिसमें से कुछ प्रकाश लीडार की तरफ प्रकीर्णित हो जाता है। प्रकीर्णित प्रकाश की किरण को ग्राही द्वारा ग्रहण कर उसके गुणों के अध्ययन से उस वस्तु के द्वारा जिससे प्रकीर्णित होकर अथवा जिस माध्यम से होकर प्रकाश ग्राही तक आता है संबंधित वस्तु अथवा माध्यम के लिए विस्तृत जानकारी जुटाई जा सकती है।

लीडार तकनीक राडार के ही सिद्धान्त पर कार्य करती है इसीलिए इसे 'लेसर रडार' भी कहा जाता है। लीडार एवं रडार में एक मुख्य अंतर उपयोग होने वाले विकिरण के तरंग दैर्घ्य में अंतर है। राडार में रेडियो बैण्ड का तरंग दैर्घ्य प्रयुक्त होता है परन्तु लीडार में लेसर द्वारा उत्पन्न प्रकाश किरणों का प्रयोग होता है जिसका तरंग दैर्घ्य इन्फ्रारेड, दृश्य अथवा अल्ट्रावायलट कोटि की हो सकता है।

लीडार का मुख्य वैज्ञानिक उपयोग पृथ्वी के वायुमण्डल के अध्ययन, हवाई सर्वेक्षण, जल की माप, समुद्र के शोध कार्यों, सेना, रासायनिक एवं जैवकारकों की पहचान, किसी स्थान की स्थिति, उसकी पहचान तथा सवारियों के चलने की रफ्तार को भी मापा जा सकता है।

शिकारी एवं बधिक शिकार की स्थिति का पता लगाने के लिए लीडार युक्त बाइनाक्यूलर्स का उपयाग करते हैं। वायुमण्डलीय लीडार से प्रकाश किरणों के वायुमण्डल में उपस्थित अवयवों से आंतरक्रिया प्रकीर्णन एवं अवशोषण से जानकारी जुटाई जाती है। लीडार के उपयोग से विभिन्न वायुण्डलीय प्राचलों को भी मापा जा सकता है जिसमें एयरोसालों एवं बादलों के गुणों, ताप, वायुगति एवं अभिवाही प्रजाति सान्द्रण afferent species ancentration शामिल हैं।

सन् 1930 की बात है जब सिंजे के मन में पहली बार वायुण्डल में प्रकाश किरण पुंज के प्रक्षेपण से उत्पन्न प्रकीर्णन द्वारा वायुमण्डल के घनत्व के मापने का विचार पैदा हुआ। उसने सुझाव दिया कि इसके लिए प्रकाश किरण पुंज के लिए ऐंटी टावर क्राफ्ट सर्चलाइट का प्रयोग किया जाए एवं रिसीवर के लिए बहुत बड़े टेलिस्कोप का प्रयोग किया जाए। जहाँ पर स्रोत व ग्राही दोनों कई किलोमीटर दूर हों तो ऐसे में बेसिक संरचना की मदद से रेंजिंग को पूर्ण किया
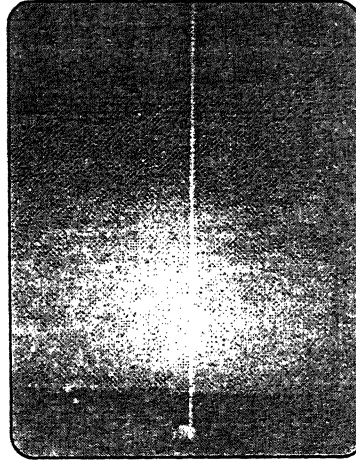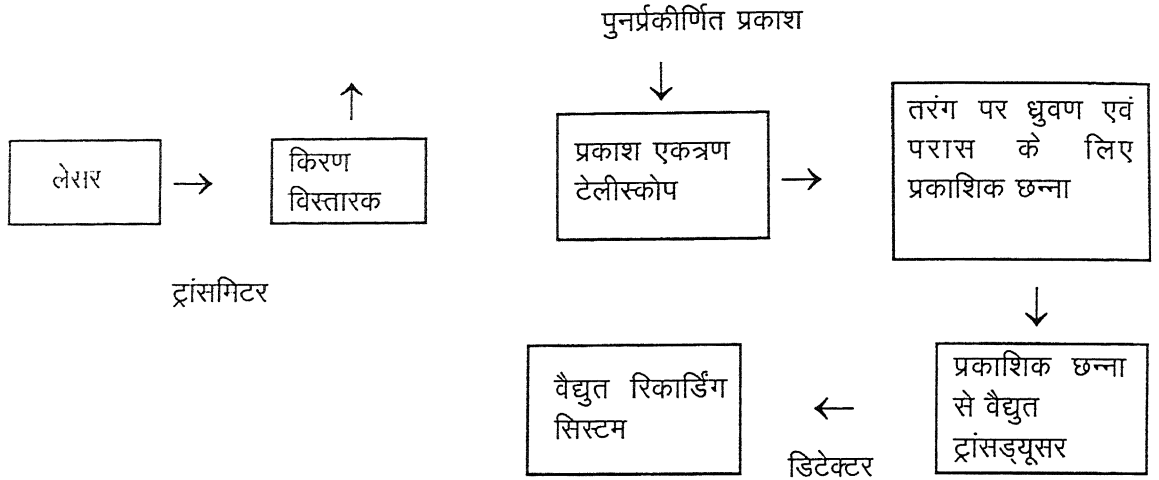
जेनरिक लीडार सिस्टम : ब्लाक डाइग्राम

जाता है।

प्रकाश वैद्युत उपकरणों की मदद से अधिकतम ऊँचाई में वृद्धि एवं संकेतों के स्तर में सुधार से तथा कई सौ सर्च लाइट किरणों के सहयोग से जो क्षेत्र पर तिरछी पड़ें आवश्यक प्रेक्षण लिए जा सकते हैं। इस विधि के प्रयोग से वैज्ञानिक डुप्लेक्स ने 2.4 किमी की दूरी तथा f/1.5 लेंस की मदद से 15 घंटे के उद्भासन से कुछ फोटोग्राफ पहली बार प्राप्त हुए। फोटोगाफ में किरणें 3.4 किमी की ऊँचाई पर दृश्य थीं। सन् 1936 ई. में हल्वर्ट ने 28 किमी की ऊँचाई से फोटोग्राफी कर इन परिणामों का विस्तार किया। इन प्रेक्षणों की मदद से उसने वातावरण घनत्व प्रोफाइल की गणना की। कुछ समय पश्चात् मोनोस्टैटिक लीडार का प्रयोग किया गया जिसमें ट्रांसमिटर (संप्रेषक) एवं रिसीवर (ग्राही) दोनों एक ही स्थान पर थे। इस प्रकार के मोनोस्टैटिक लीडार को दो भागों में उपविभाजित किया जा सकता है :

एक तो यह जिसमें लेसर किरण रिसीवर के सहकक्षी संप्रेषण हो। दूसरा द्विअक्षीय प्रणाली जिसमें ट्रांसमीटर तथा रिसीवर एक दूसरे के निकट हों। सन् 1938 में सर्वप्रथम मोनोस्टैटिक सिस्टम प्रयोग में लाया गया तथा इसकी मदद से बादलों की ऊँचाई मापने की कोशिश की गई।

तकनीक के विकास के साथ उपकरणों में भी विकास हुआ तथा वैज्ञानिकों ने द्विस्थैतिक प्रणाली की मदद से, जिसमें ट्रांसमीटर तथा रिसीवर एक दूसरे से 20.5 किलोमीटर की दूरी पर थे, 67.6 किलोमीटर दूरी तक घनत्व प्रोफाइल की गणना की गई। घनत्व प्रोफाइल की माप एवं रेले तकनीकि की सहायता से टेम्परेचर प्रोफाइल की गणना की गई। सन् 1956 में प्रथम पल्स आधारित मोनोस्टैटिक सिस्टम के द्वारा वातावरण के घनत्व को मापने में सफलता मिली। मोनोस्टैटिक लीडार की मुख्य बात यह है कि प्रत्येक लाइट पल्स फायर्ड के लिए एक पूर्ण ऊँचाई पर विकीर्णन प्रोफाइल की रिकार्डिंग की जा सकती है।

सन् 1962 में क्यू. स्विच्ड लेसर के आविष्कार के बाद लीडार के लिए एक नये तरीके का प्रकाश स्रोत उपलब्ध हुआ। इस प्रकार सर्वप्रथम 1962 में लीडार में

लेसर किरणों का उपयोग किया गया।

1960 से लेकर आज तक बहुत अधिक संख्या में लीडार सिस्टम का विभिन्न आवश्यकआतों के अनुसार विकास किया जा चुका है। एयरोसाल लीडार बादल, स्ट्रैटोस्फियर तथा निम्न स्ट्रैटोस्फियर के अध्ययन के लिए उपयोगी है। एयरोसाल गुणों का अध्यन करने के लिए बहुगुण तरंग दैर्घ्य का प्रयोग किया जाता है।

आजकल पर्यावरण मानिटरिंग के लिए इसका विशेष रूप से उपयोग किया जाता है। इस तकनीक की मदद से वायुमंडल की निचली परत में NO, H_2O, O_3, SO_2, CH_4 आदि का मापन किया जाता है। यही नहीं, डायल तकनीक का उपयोग हाई टारगेट के अध्ययन में भी किया जाता है।

वातावरण में जलघनत्व के मापन एवं बादलों के अध्ययन के लिए रमन लीडार का प्रयोग किया जाता है। वायुमण्डलीय घटकों एवं वायुमण्डल की ऊपरी सतहों में घटकों में परिवर्तन के अध्ययन के लिए लीडार एक बहुत ही उपयोगी तकनीक है। यह मानचित्रण, रक्षा, समुद्र विज्ञान एवं प्राकृतिक संसाधन के अध्ययन में विशेष रूप से उपयोगी है। अगले दशक में ऐसी उम्मीद है कि वातावरण के वायुमण्डल के अध्ययन के लिए विभिन्न सार्थक, स्पेस बेस्ड लीडार के विकास की आवश्यकता है। इन सिस्टमों की मदद से ग्लोबर स्केल भू विज्ञान लेसर आल्टीमीटर सिस्टम एटमॉस्फेरिक लीडार अर्थ सिस्टम साइन्स पाथ फाइन्डर 3, CENA उपकरणों के साथ ग्लोबल ओजोन वितरण के अध्ययन की योजना है। ये स्पेस बेस्ड मिशन धरती पर विकसित वातावरण के अध्ययन के उपकरणों के पूरक होंगे तथा इनकी मदद से भूमण्डल का विस्तृत अध्ययन करने में सहायता मिलेगी। वायुघनत्व, तापमान, त्रिविमीय वायु सदिश, एरोसाल्स बादल बण एवं उच्च ऊर्ध्वाधर एवं टेम्पोरल रिजोल्यूशन पर कुछ चुनी हुई ट्रेस गैसों के अध्ययन में उपयोगी होंगे।

नयी सहस्राब्दि में आकाश एवं आकाश आधारित राडार एवं लीडार सुविधाओं से युक्त सहयोगी संगेल की मदद से निश्चित रूप से मौसम तथा जलवायु परिवर्तन की भविष्यवणी करने की क्षमता में निश्चित रूप से आशातीत वृद्धि होगी एवं उपलब्ध आँकड़ों की मदद से वायु, ताप, बादल कणों एवं विभिन्न अवयवों को गइराई से अध्ययन किया जा सकेगा।

शोध छात्र भौतिकी
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

पृष्ठ 28 का शेष .....

विज्ञान लोकप्रियकरण का आन्दोलन निर्बल पड़ गया।

दिल्ली में मास्टर रामचन्द्र तथा उनके शिष्य जकाउल्ला आधी सदी तक अभूतपूर्व परिश्रम करके उर्दू को विज्ञान की भाषा बनाने में सफल हुए। अलीगढ़ में सर सय्यद अहमद ने भी उर्दू के माध्यम से विज्ञान लोकप्रियकरण के प्रयास किये। हैदराबाद में तो विश्वविद्यालय ही उर्दू के द्वारा विज्ञान शिक्षण का केन्द्र बना हुआ था।

लेकिन चाहे बंगाल हो या उत्तर प्रदेश या कि हैदराबाद, पंजाब या दिल्ली, वहाँ के सारे प्रयास व्यक्तिकेन्द्रित थे। उसके बाद उनका अभियान ठंडा पड़ गया। यही नहीं, चूँकि ये सारे प्रयास भिन्न भिन्न भाषाओं में हो रहे थे अतः पारिभाषिक शब्दावली में भिन्नता बनी रही और जब 1950 में भारत सरकार ने मानक पारिभाषिक शब्दावली निर्माण का कार्य अपने हाथ में लिया तो उसका विरोध होने लगा। अब 50 वर्षों के बाद ऐसा लगने लगा है कि देश भर में राष्ट्रभाषा हिन्दी में निर्मित पारिभाषिक शब्दावली शायद सर्वग्राह्य बनने लगी है।

प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग
इलाहाबाद

राम्बुतान

स्व० रमेश बेदी

राम्बुतान का फल लीची से मिलता जुलता है। मुख्य अन्तर यह है कि इसके ऊपर लम्बे, मांसल, रंगीन कांटे होते हैं जो लीची पर नहीं होते।

इसे संस्कृत में मृदुकण्ट रसिनी कहते हैं, जिसका अर्थ मुलायम कांटों वाला लीची जैसा रसीलाफल। संस्कृत में इसका एक और नाम है– शोणशल्य रसिनी जिसका अर्थ है लाल कांटों वाली लीची। अंग्रेजी में इसे राम्बुतान या राम्बुस्तान कहते हैं। आधुनिक वनस्पतिशास्त्र में इसका नाम नेफ्रेलिउम लाप्पाचेउम लिनिअस है।

स्वरूप

यह मध्यम आकार का वृक्ष है जो पन्द्रह से पच्चीस मीटर तक ऊंचा हो जाता है पत्ते पक्षाकार होते हैं। फूल छोटे, श्वेत वर्ण होते हैं। फल 3.8 से 8 सेंटीमीटर लम्बे, दो से पांच सेंटीमीटर व्यास के, पीले या चमकीले लाल रंग के, मुलायम कांटों से ढँके होते हैं। पतला, चर्मल छिलका आसानी से फट जाता है। सफेद या गुलाबी झांई वाले, पारभासी, रसीले, जरा खट्टे गूदे में 2.5 से 3.5 सेंटीमीटर लम्बी गुठली रहती है।

राम्बुतान की फलदार शाखा

बागवानी

यह मलेशिया का मूलवासी है। भारत और अन्य गरम देशों में संप्रविष्ट किया गया है। नीलगिरी के निचले ढलानों पर काल्लार में इसके कुछ वृक्ष उग रहे हैं।

सारे मलय में राम्बुतान की खेती की जाती है। वहां इसकी अनेक औद्योगिक किस्में बन गई हैं। इनमें से करीब ग्यारह किस्में कृषि के लिए चुनी गई हैं। यह पौधा आर्द्र, गरम जलवायु में 300 मीटर से कम ऊंचाई पर पनपता है। वहां कम से कम वर्षापात 250 से 300 सेंटीमीटर होना चाहिए और साल में समान रूप से विभक्त होना चाहिए। इसे बढ़िया उपजाऊ, पानी के अच्छे निकास वाली, बलुआ दुमट की जरूरत होती है। चिकनी मिट्टी हो तो उसमें प्रचुर परिमाण में गोबर आदि की खाद मिला दी जाती है।
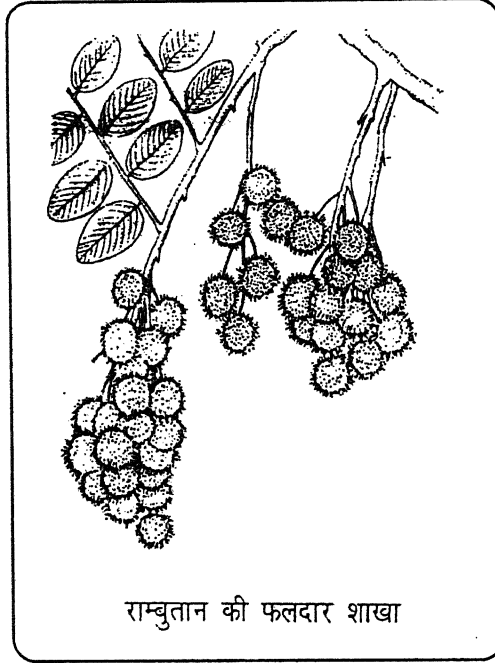
दाबकलमों, या भेंटकलमों (inarching) द्वारा और चश्मा चढ़ाकर (budding) राम्बुतान के नए पौधे तैयार करना श्रेयस्कर होता है। काल्लार में 6.0 से
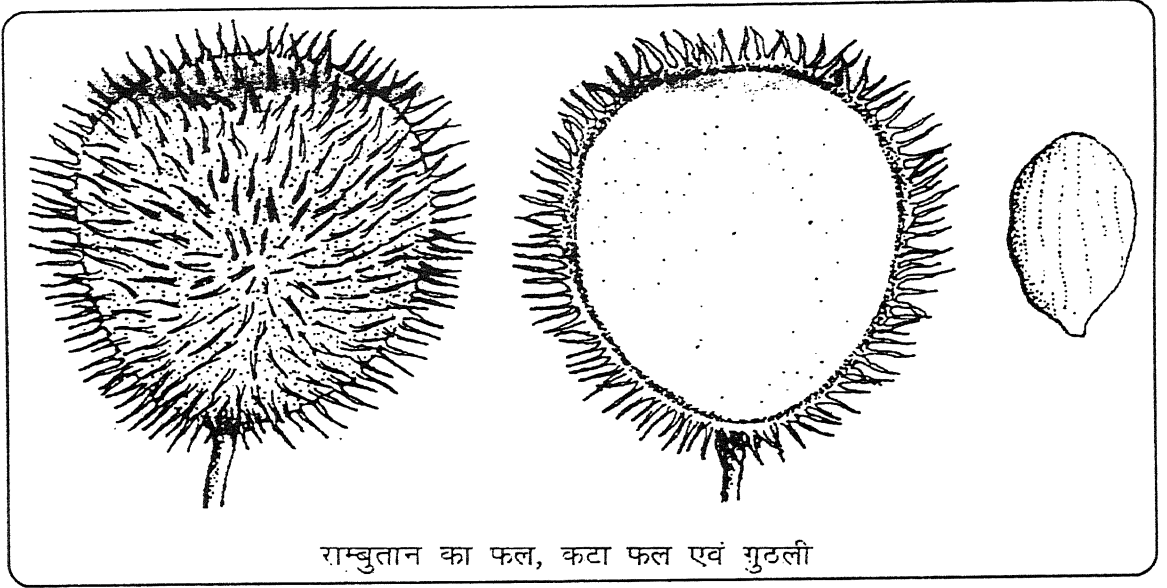
राम्बुतान का फल, कटा फल एवं गुठली

7.5 मीटर के फासले पर पेड़ रोपे जाते हैं। बोने के करीब छह साल बाद फल आने लगते हैं। फल धारण करने का मौसम सितम्बर से नवम्बर तक है। एक पेड़ हर साल लगभग नौ किलोग्राम फल दे देता है।

आहार उपयोगी घटक

फल में लगभग बत्तीस प्रतिशत गूदा होता है। यह मीठा और प्रिय स्वाद वाला होता है, ताजा ही अकेला या दूसरे फलों के साथ मिलाकर खाया जाता है। इसका मुरब्बा भी बनाया जाता है। श्रीलंका में फल के गूदे का विश्लेषण है : आर्द्रता 82.3, प्रोटीन 0.46, ईथर निष्कर्ष 0.07, कुल कार्बोहाइड्रेट्स 16.02, अपचायक शर्कराएं 2.9, इक्षु शर्करा 5.8, रेशे 0.24 और खनिज पदार्थ 0.91 प्रतिशत। कैल्सियम 10.6, फास्फोरस 12.9 और विटामिन सी 30 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम। छिलके में टैनिन और एक विषैला तत्व सैपोनीन होता है।

बीज का भार 1.4 से 2.0 ग्राम होता है। बीज में लगभग 92 प्रतिशत गिरी निकलती है। इसमें से 37 से 43 प्रतिशत ठोस वसा प्राप्त होती है। इसे राम्बुतान टैलो कहते हैं। यह कोको बटर जैसी होती है। सामान्य तापमान पर यह कठोर और श्वेत होती है। गरम करने पर यह प्रिय गन्ध वाला पीला तेल बन जाता है। इस तेल में पाए जाने वाले वसीय अम्ल हैं : पामिटिक 2.0, स्टीयरिक 13.8, आराकिडिक 34.7, ओलीक 45.3 और एइकोसेनिक 4.2 प्रतिशत।

उपयोग

राम्बुतान की वसा खाने योग्य है। यह साबुन और मोमबत्तियां बनाने के लिए उपयुक्त है। लकड़ी कठोर, भारी, लाल या आरक्त श्वेत या कुछ कुछ भूरी होती है। सुखाते हुए फट सकती है। सामान्य निर्माण कार्यों के लिए उपयोगी है।

चीन में फल क्षुधावर्धक और आन्त्रकृमिहर समझा जाता है। कम्बोडिया में ग्राही और ज्वरहर के रूप में प्रयोग किया जाता है। बीज कड़वे और प्रमीलक (narcotic) हैं। इन्हें भूनकर खाया जाता है। सिरदर्द में पत्तों की पुल्टिस लगाते हैं।

बेधी शोध संस्थान
डी 28, राजौरी गार्डन
नई दिल्ली 110027

पशु कल्याण के क्षेत्र में प्राणिमित्र पुरस्कार

डॉ० शीतला प्रसाद वर्मा

पशुओं के जनकल्याण हेतु 1960 में पशु क्रूरता निवारण अधिनियम बनाया गया। इन नियमों के प्रचार–प्रसार एवं अनुपालन हेतु 1962 में भारतीय जीव जन्तु कल्याण बोर्ड की स्थाना की गई। बोर्ड की संस्थापक अध्यक्ष श्रीमती रुक्मिणी देवी अरुण्डेल ने तीन कार्यों का बीड़ा एकसाथ उठाया। वे हैं–

1. पशुओं के साथ मानवीय व्यवहार करने की शिक्षा देना।

2. पशुओं का अनावश्यक कष्ट एवं पीड़ा देने के विरुद्ध जनमत जागृत करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करना।

3. पशु सेवा के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान करने वालों को पुरस्कृत करना।

स्व0 रुक्मिणी देवी अरुण्डेल की अध्यक्षता में 1962 में हुई बैठक में यह निर्णय लिया गया कि उत्कृष्ट पशु सेवा हेतु दिये जाने वाले पुरस्कार का नाम 'प्राणी मित्र' होगा। इसे राष्ट्रीय पुरस्कार का स्तर प्रदान करने
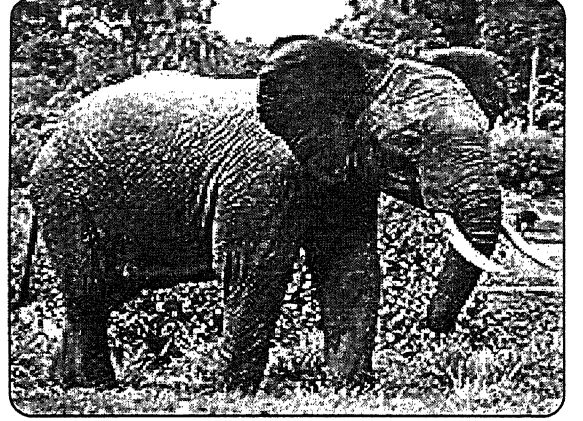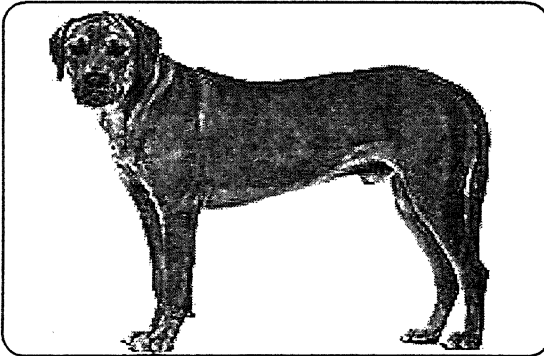
के लिए तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन के कर कमलों से राष्ट्रपति भवन के सभागार में एक विशेष समारोह आयोजित कर श्री जे. एन. मनकार को पहला पुरस्कार दिया गया।

'प्राणी मित्र' पुरस्कार के तहत वर्तमान में एक लाख रुपये की राशि के साथ 14 कैरेट का स्वर्णपदक एवं प्रशस्ति पत्र दिया जाता है। पदक पर भारतीय जीव जन्तु कल्याण बोर्ड का एम्बलम अंकित होता है जिसके ऊपर 'करुणा कार्य रूप में' तथा तल पर 'प्राणि मित्र पुरस्कार' अंकित होता है। यह पुरस्कार प्रतिवर्ष व्यक्तियों, संस्थानों को उल्लेखनीय योगदान के आधार पर प्रदान किया जाता है। इस पुरस्कार हेतु निम्न मानदण्डों पर विचार किया जाता है।

1. यदि कोई भारतीय नागरिक पशु सेवा की दिशा में बिना कोई पारिश्रमिक लिए जीव जन्तु क्रूरता

प्राणिमित्र पुरस्कार से सम्मानित पशुप्रेमी

श्री जे.एन. मानकर, मुम्बई 1966
सुश्री एस.एफ. वाडिया, मुम्बई 1967
श्री धर्मपाल सिंह, पटना 1967
श्रीमती रुक्मिणी देवी अरुण्डेल, चेन्नई 1968
श्री पी.एन. चटर्जी, कलकत्ता 1969
डॉ0 डी.जी. कपूर, लन्दन 1969
श्री जी.आर. राजगोपाल, दिल्ली 1970
श्री आनन्दराज खुराना, दिल्ली 1970
श्रीमती डी.एन. मलेगामवाला 1971
डी डब्ल्यू. के. मरक्यूरिस 1972
श्री पीलाराम कृष्णा 1972
श्री टी.एस. श्रीपाल 1977
श्री पी.एस. कृष्णास्वामी 1977
श्रीमती मेनका गाँधी, नई दिल्ली 1999
श्रीमती काया गुप्ता, कलकत्ता 1999
कैप्टन वी. सुन्दरम, चेन्नई (मरणोपरान्त) 1999
श्री डी.एम. ठाकर, मुम्बई 1999
श्रीमती मरधाबेन एम. खण्डार, अहमदाबाद 1999
कामरेड तिलकराज, अमृतसर 1999
श्रीमती गीता बेन, अहमदाबाद (मरणोपरान्त) 1999
श्री हरिभाई, अहमदाबाद (मरणोपरान्त) 1999
श्री सुनील कुमार, बिजनौर (मरणोपरान्त) 1999
श्री प्रकाश शाह, बांसकाटा (मरणोपरान्त) 2000
श्री अनिल कुमार, गाजीपुर (मरणोपरान्त) 2000
श्री मुरली बोहरा, जोधपुर (मरणोपरान्त) 2000
श्री गंगाराम, जोधपुर (मरणोपरान्त) 2000
श्री नाथूलाल लोढ़ा, नीमच (मरणोपरान्त) 2000
श्री श्याम एम. बल्लाल, नागपुर (मरणोपरान्त) 2000
श्री महराज दत्ता सरनानन्द जी, जलोर 2001
श्री केशरी चन्द मेहता 2001
श्री हरीश प्रताप जोशी (हरीश भाई), रायपुर 2001
श्री राजीव गुप्ता (आई.एस.एस. यू.पी. कैडर) 2001
श्री डी.आर. मेहता, मुम्बई 2001

निवारण के लिए कम से कम बीस वर्षों तक कार्य कर चुका हो।

2. जीव जन्तु क्रूरता निवारण के सम्पादित कार्यक्रमों पर अनोखा योगदान दिया हो।

3. जीव जन्तु क्रूरता निवारण की दिशा में ऐसी धारणाओं की रोकथाम के लिए लोगों की जानकारी बढ़ाने तथा शिक्षित करने हेतु योगदान।

4. जीव जन्तुओं पर अनुसंधान के दौरान होने वाली क्रूरताओं को रोकने वाली विधि का ईजाद, पशुओं के वध या अन्य कोई विधि जहाँ पशु प्रयोग किये जाते हों।

5. प्राकृतिक आपदा के दौरान अपने निजी सम्पत्ति से पशु शरण स्थल, बचाव गृहों की स्थापना का कार्य।

6. जीव जन्तु कल्याण के उपायों, कार्यक्रमों के विकास तथा जीव जन्तु कल्याण संस्थाओं की स्थापना कर उनका विशिष्ट क्रियान्वयन किया हो।

पुरस्कार प्राप्त करने के लिए पारम्परिक तौर पर नामांकन की प्रक्रिया अपनाई जाती है। भारतीय जीव जन्तु कल्याण बोर्ड नामांकन आमंत्रित करने के लिए व्यापक प्रचार करता है जहाँ संस्थागत नामांकन के लिए जीव जन्तु कल्याण के अनूठे विचारों पर आधारित प्रयासों तथा गुणात्मक एवं परिमाणात्मक योगदान को ही पूरा आधार माना जाता है। यह पुरस्कार निश्चित वर्षों के कार्यों पर ही प्रदान किया जाता है। विभिन्न प्रदेशों की जीव जन्तु कल्याण संस्थाओं तथा राज्य सरकारों से प्राप्त नामांकन को बोर्ड की कार्यपालक समिति समीक्षा करती है। यह पुरस्कार भारत के महामहिम राष्ट्रपति द्वारा आमतौर पर हर वर्ष एक औपचारिक कार्यक्रम में प्रस्तुत किया जाता है।

प्रवक्ता (पशुपालन)
कुलभास्कर आश्रम महाविद्यालय
इलाहाबाद

'कोर' पर फिर छिड़ी बहस

संदीप निगम

15 मई 2003। कैलीफोर्निया इंस्टीट्यूट आफ टेक्नोलॉजी में वान ओसडॉल प्रोफेसर आफ प्लेनेटरी साइंस डेव स्टीवेंसन का रिसर्च पेपर, 'क्रैक टू की ओपन इन द अर्थ' शीर्षक से प्रकाशित है जो नेचर के ताजा अंक में प्रकाशित हुआ है। प्रो. स्टीवेंसन कहते हैं हम सौरमंडल व इससे परे विभिन्न ग्रहों तक मानवविहीन मिशन भेजने में दस अरब डालर से ज्यादा की रकम खर्च कर चुके हैं जबकि हैरत की बात है कि पृथ्वी में दस किलोमीटर से अधिक गहराई के बारे में हमें ज्यादा कुछ नहीं पता है। साइंस व टेक्नोलॉजी की प्रगति के बावजूद भूकंप के दौरान एकत्रित किए गए डाटा के विश्लेषण पर ही आधारित है। साइंटिस्ट अब भी नहीं जानते कि पृथ्वी के केंद्र यानि कोर का तापमान सही सही कितना है और कोर किन पदार्थों से निर्मित है।

अपने रिसर्च पेपर में पृथ्वी के केंद्र के बारे में सटीक जानकारी प्राप्त करने के लिए एक 'प्रोब' को कोर तक भेजने और वहाँ से सूचना प्राप्त करने की रूपरेखा प्रस्तुत की है। इसके अनुसार कुछ मेगाटन के नाभिकीय विस्फोट द्वारा पृथ्वी की सतह पर कई किलोमीटर गहरी और कई सौ मीटर लंबी दरार बनाई जाए।

प्रो. स्टीवेंसन के अनुसार यह दरार करीब 30 सेंटीमीटर चौड़ी होनी चाहिए। इस दरार में दसियों लाख टन पिघला लोहा डाला जाए, इसके साथ ही उच्च ताप व दाब को सह सकने वाले पदार्थ से निर्मित गेंद के आकार का एक संवेदनशील प्रोब भी दरार में डाला जाए। गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव से यह पिघला लोहा और उसके साथ प्रोब दरार में अंदर और अंदर धंसता और धरती की अंदरूनी सतहों या प्लेटों को फाड़ता चला जाएगा और इस प्रकार यह लोहा व प्रोब सतह से 3000 से 5000 किलोमीटर गहरे स्थित पृथ्वी के कोर तक पहुँचने में कामयाब हो जाएगा। सतह पर लेजर इंटरफेरोमीटर ग्रेविटेशनल वेव ऑसिलेटर (एलआईजीओ) की मदद से प्रोब की कोर तक की यात्रा पर नरज रखी जाएगी। यह बिल्कुल ज्वालामुखी की कार्यप्रणाली को उलटने जैसा ही है। अज्ञात जगहों के बारे में प्रोब के इस्तेमाल का यह कोई पहला मामला नहीं होगा, क्योंकि इससे पहले मंगल व अन्य ग्रहों के बारे में सूचना हासिल करने के लिए प्रोब भेजे जा चुके हैं। प्रो. स्टीवेंसन का कहना है कि गेंद के आकार के प्रोब से छोटी कोई भी चीज कोर तक जाकर काम नहीं करेगी और इससे बड़े आकार वाले यंत्रों को कोर तक भेजने में पैसा बहुत खर्च होगा।
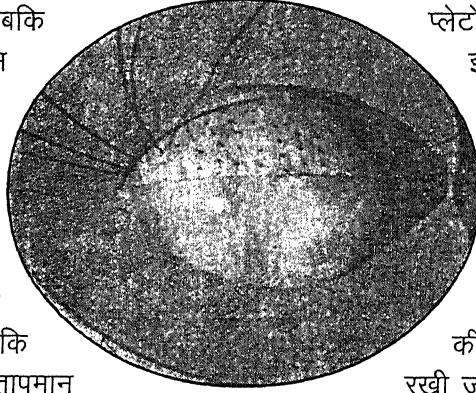
पृथ्वी के केंद्र तक पहुँचने का रास्ता बनाने के लिए ड्रिलिंग काम नहीं करेगी क्योंकि जैसे जैसे गहराई

बढ़ती जाएगी ड्रिलिंग मुश्किल होती जाएगी। जबकि दरार में डाला गया लाखों टन पिघला लोहा दरार को और चीरते हुए केंद्र तक निर्बाध गिरता चला जाएगा, क्योंकि पृथ्वी के अंदरूनी पदार्थों की अपेक्षा लोहे का घनत्व दोगुना होता है। प्रो. स्टीवेंसन प्रोब के बारे में बताते हैं कि इस प्रोब को खासतौर पर डाटा कलेक्शन के लिए ही डिजाइन किया जाएगा और पृथ्वी के केंद्र या कोर तक पहुँचने के बाद प्रोब मोर्स कोड जैसी ध्वनि तरंगों की मदद से सतह पर डेटा भेजेगा। कोर से सूचनाएँ प्राप्त करने में मोर्स कोड या ध्वनि तरंगों का प्रयोग इसलिए भी जरूरी है क्योंकि पृथ्वी की गहराई से रेडियो वेव्स, ट्रांसमिट नहीं हो सकते। यह प्रोब 10 वाट की बैटरी से काम करेगा और यह भी संभव है कि पिघले लोहे के साथ कोर तक की यात्रा के दौरान मैकेनिकल ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में बदल कर प्रोब की बैटरी में संग्रहीत किया जा सकेगा, यह बिल्कुल वैसा ही है जैसे कि गिरते हुए पानी से विद्युत का उत्पादन करना। पिघले हुए लोहे के साथ कोर तक की यात्रा में प्रोब की गति करीब दस मील प्रति घंटे की होगी और इस रफ्तार से कोर तक पहुँचने में प्रोब को कुछ हफ्तों का समय लगेगा। प्रो. स्टीवेंसन कहते हैं कि पृथ्वी के केंद्र तक प्रोब को भेजने की मेरी योजना पृथ्वी में दरारोकं की प्रकृति, फ्लूड डायनामिक्स, मैकेनिकल वेव प्रोपेगेशन और 'स्ट्रेस स्टेट्स' जैसे भौतिकी के नियमों पर आधारित है। ज्वालामुखी के लिए भौतिकी के यही नियम जिम्मेदार होते हैं। इस योजना पर काम करने के लिए सबसे बड़ी चुनौती नाभिकीय विस्फोट द्वारा शुरुआती दरार बनाने की है और दूसरी समस्या ऐसे प्रोब को डिजाइन करने की है जो पृथ्वी के केंद्र में जाकर काम को सही ढंग से अंजाम दे सके। यह मुश्किल काम नहीं है क्योंकि अंतरिक्ष में किसी तारे के नष्ट होने जैसी घटनाओं से उत्पन्न होने वाली ग्रैविटेशन वेव्स का अध्ययन करने में प्रोब जैसे बेहद संवेदनशील उपकरणों का प्रयोग एक आम बात है।

पृथ्वी के केंद्र में जाकर प्रोब कोर के तापमान, इलेक्ट्रिकल कंडक्टिविटी और कोर की रासायनिक संरचना से संबंधित सूचनाएँ या डेटा हमें सतह पर भेज सकता है। सतह पर कैल्टेक के लेजर इंटरफेरोमीटर ग्रैविटेशनल वेव ऑसिलेटर (एलआईजीओ) की मदद से हम इस सूचना को आसानी से डिकोड कर सकते हैं। प्रो. स्टीवेंसन कहते हैं मुझे मालूम है कि 'नेचर' में मेरे पेपर को पढ़कर 95 प्रतिशत साइंटिस्ट मुझ पर हँस रहे होंगे, लेकिन यदि पाँच प्रतिशत साइंटिस्ट पृथ्वी के कोर के बारे में सटीक जानकारी प्राप्त करने की मेरी योजना को गंभीरतापूर्वक लेते हैं तो मुझे खुशी होगी। एक नेट इंटरव्यू में प्रो. स्टीवेंसन से पूछा गया कि आपका प्रोजेक्ट कहीं फिल्म 'द कोर' के कथानक से प्रभावित तो नहीं है। इस पर प्रो. स्टीवेंसन ने कहा कि इस बारे में पहला विचार मुझे सालों पहले आया था। 'द कोर' का कथानक एक फैंटेसी है जबकि मेरा प्रोजेक्ट साइंटिफिक तथ्यों पर आधारित है।

– साभार

5 जून 2003
पर्यावरण दिवस

पर्यावरण विषयक प्रभूत सामग्री होते हुए भी हम किन्हीं कारणों से इस अंक में कुछ ही निबन्ध दे पा रहे हैं इसका हमें खेद है। आशा है हमारे पाठक इसे अन्यथा नहीं लेंगे।

– सम्पादक

मानव क्लोन मानव हित में नहीं

आँधी–तूफान के थम जाने के बाद जिस तरह का सन्नाटा छा जाता है, इन दिनों कुछ इसी प्रकार का सन्नाटा विज्ञान जगत में सफल मानव क्लोनन के बाद नज़र आ रहा है। मानव क्लोन की वकालत करने वालों ने एकाएक चुप्पी साध ली है। इसके कारणों में जिस बिन्दु पर सर्वप्रथम ध्यान केन्द्रित होता है वह है विश्व की प्रथम क्लोनित स्तनपायी भेड़ डॉली को मौत की नींद सुला दिया जाना। स्काटलैण्ड के वैज्ञानिक इयान विल्मुट और उनके सहयोगी वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं कि डॉली श्वास रोग (फेफड़े के संक्रमण) से बुरी तरह ग्रस्त थी और यह रोग उन अनेक रोगों में से एक था, जिससे 6 वर्षीय डॉली पीड़ित थी। दूसरे डॉ0 सेवेरिनो एण्टिनोरी, जो इटली के प्रसिद्ध वैज्ञानिक हैं, ने गत वर्ष घोषणा की थी कि वर्ष 2003 जनवरी में उनके द्वारा क्लोनित शिशु का जन्म होगा। किन्तु दिसम्बर 2002 में 'क्लोनएड' ने क्लोनन विधि से जन्मे एक शिशु की सफल उपलब्धि की सूचना दे दी। यह खबर जंगल की आग की तरह आनन–फानन में सारे संसार में फैल गई। डॉ0 सेवेरिनो की चुप्पी के और भी कारण हो सकते हैं। हो सकता है शिशु की मृत्यु जन्म से पूर्व ही हो गई हो। यह भी हो सकता है कि कानूनी कार्यवाही के डर से जन्म को छिपाया गया हो। हो सकता है शिशु जैसा कुछ रहा ही न हो। यह प्रश्न अभी भी अनुत्तरित है कि डॉ0 सेवेरिनो क्यों खामोश हैं ?

आमतौर से एक भेड़ का जीवन काल 12 वर्षों का होता है। कुछेक वैज्ञानिकों के अनुसार जिस मादा भेड़ के थन से ऊतक निकाले गए थे वह 6 वर्ष की थी अर्थात् 6 वर्ष की उम्र डॉली तो जन्म के समय ही जी चुकी थी, लगभग 6 वर्ष की वय में लाइलाज रोगों से ग्रस्त होने के कारण उसे सर्वदा के लिए सुला दिया गया। डॉली वास्तव में बूढ़ी हो गई थी, अथवा नहीं, यह शोध का विषय है।

डॉली ही नहीं पिछले कुछेक वर्षों में जितने भी जानवरों को क्लोनन द्वारा पैदा किया गया, उनमें से अधिकांश में कोई न कोई विरूपता अथवा रोग थे, जिनके कारण असमय ही मृत्यु के मुख में समा जाना पड़ा। आस्ट्रेलिया में एक क्लोनित गौर शिशु (जंगली भैंसा) जन्म के बाद ही काल के गाल में समा गया। इयान विल्मुट स्वीकार करते हैं कि संसार में क्लोनित जानवरों की संख्या हज़ारों में होगी, किन्तु सभी में कोई न कोई विरूपता अवश्य है।

इस प्रकार अभी तो जानवरों के क्लोनन के लिए जो भी तकनीकें प्रस्तुत की जा रही हैं, उन सभी में गड़बड़ियाँ हैं। ऐसा लगता है कि सभी तकनीकें अभी शैशव अवस्था में हैं और उनमें सुधार की आवश्यकता है। फिर ऐसी दशा में मानव क्लोनन की क्या स्थिति है, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। क्लोनन तकनीकें निःसंदेह महत्वपूर्ण हैं किन्तु ज्ञान–विज्ञान का विस्तार मानव की गरिमा के मूल्य पर तो कभी भी नहीं होना चाहिए। सच पूछिए तो अभी जानवरों के क्लोन तैयार करने की तकनीक हम परिशुद्ध नहीं कर पाये हैं। इसलिए मानव के क्लोन बनाने पर प्रतिबंध होना चाहिए।

लोप होते पक्षी

वर्ल्ड वाइड इंस्टीट्यूट के पक्षियों के विषय में एक सूचना चौंकाने वाली हैं और साथ ही चिंता का विषय भी। आज से 65 मिलियन वर्ष पूर्व डायनासोर इस धरती से विलुप्त हो गए थे और उसके बाद जिस तेज़ रफ़्तार से चिड़ियों की संख्या घट रही है, यह चेतावनी है पक्षियों के अनेक जातियों के विलुप्त होने की। होवर्ड्स यूथ नामक एक पक्षी विज्ञानी अपने शोधपत्र– विंग्ड मेसेंजर्स : द डेक्लाइन ऑव बर्ड्स– के हवाले से कहते हैं कि पक्षियों की घटती या बढ़ती संख्या पर्यावरण गें परिवर्तन की ओर इंगित करती है। मनुष्य की आवश्यकता नहीं, वरन लालच के कारण पक्षियों की अनेक जातियों का इस धरती से लोप होता जा रहा है। सारे संसार की पक्षियों की कुल संख्या का 12 प्रतिशत या दूसरे शब्दों में कहें तो 1,200 पक्षी–जातियाँ विलुप्त होने के कगार पर आ गई हैं। अर्थात् प्रत्येक 8 पक्षी जातियों में से एक ख़तरे के घेरे में है।

पक्षियों के विलुप्तीकरण के कई कारण वैज्ञानिकों ने बताये हैं। वर्ल्ड वाइल्ड इंस्टीट्यूट के अनुसार प्रमुख कारण है जनसंख्या विस्फोट और पक्षियों के आवास का सिमटते जाना। मौसम में परिवर्तन एक अन्य कारण है। विश्वताप के बढ़ने अथवा धरती के गर्म होते जाने के कारण पक्षियों के घोसला बनाने और देशांतरण में भी बदलाव आ गया है। उन्हें अपने मूल आवास को छोड़कर वैकल्पिक व्यवस्था के लिए विवश होना पड़ता है। उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त, उद्योग और यातायात, वृक्षों और जंगलों का काटा जाना, हाईवेज का निर्माण, विद्युत या टेलीफोन के तार आदि कुछ अन्य कारण हैं जो पक्षी–विलुप्तीकरण को गति प्रदान कर रहे हैं। पक्षियों की कम होती जातियों को बचाना वास्तव में जैव विविधता को संरक्षित करना है। इस ओर हमें अविलम्ब सार्थक कदम उठाने होंगे।

गंगोत्री हिमनदी को खतरा

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के लॉ कॉलेज द्वारा आयोजित पर्यावरण संबंधी एक संगोष्ठी को सम्बोधित करते हुए प्रसिद्ध पर्यावरणविद सुन्दरलाल बहुगुणा ने बताया कि वर्ष 2025 तक गंगोत्री हिमनदी पूरी तरह रिक्त हो जायेगी। इससे गंगोत्री हिमनदी की वर्तमान स्थिति का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। बहुगुणा जी की बात में दम है। आज गंगोत्री हिमनदी को लेकर अनेकानेक पर्यावरण विज्ञानी और प्रबुद्ध व्यक्ति चिंतित हैं। अभी पिछले दिनों भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण और डिपार्टमेंट ऑव साइन्स एण्ड टेक्नोलॉजी (भारत सरकार) के संयुक्त तत्वावधान में लखनऊ में गंगोत्री से संबंधित एक कार्यशाला सम्पन्न हुई जिसमें अनेक पर्यावरणविद और वैज्ञानिकों ने भाग लिया। इस कार्यशाला में हिमनदी के अतिरिक्त आसपास के क्षेत्रों में भूमिस्खलन, तूफ़ानी हिमपात, मृदा अपरदन, प्रदूषण जैसी अनेक समस्याओं की चर्चा की गई। इस बात पर जोर दिया गया कि दुर्घटना घटित हो जाने के बाद कुछ करने की जगह समस्याओं के उत्पन्न होने से पूर्व ही कारगर कार्ययोजना बनाना अत्यंत आवश्यक है। गंगोत्री मात्र एक हिमनदी नहीं उत्तरांचल की तो जीवन रेखा ही है। यदि गंगोत्री हिमनदी निःशेष हो गई तो सम्पूर्ण उत्तर भारत प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकेगा।

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
पूर्व अध्यक्ष, वनस्पति विभाग
सी.एम.पी. डिग्री कॉलेज
इलाहाबाद–211002

अग्नि प्रक्षेपास्त्र के जनक इंजी. रामनारायण अग्रवाल

डॉ० डी.डी. ओझा

देश के सबसे बड़े राज्य 'राजस्थान' का अपना अलग ही वैशिष्ट्य है, इस राज्य की अपनी धरोहर है, पर्यटन की दृष्टि से यह बहुत महत्वपूर्ण है तथा राजस्थान की जल संरक्षण परम्पराएं पूरे देश के लिए प्रेरणास्पद हैं। राजस्थान न केवल वीरों की वरन् वैज्ञानिकों की जन्मस्थली भी है। वहाँ प्राचीन काल में ब्रह्मगुप्त एवं कपिल आदि से लेकर अर्वाचीन काल के पंचानन माहेश्वरी, मिठ्ठालाल रूनवाल, दौलतसिंह कोठारी, कैलाश सांखला, गोवर्धन मेहता, राजेन्द्र सिंह परोदा जैसे अनेक अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिकों ने जन्म लेकर अपने गहन एवं जनोपयोगी अन्वेषण से देश का नाम अंतर्राष्ट्रीय पटल पर उजागर किया है। इसी शृंखला के एक मोती इंजी. रामनारायण अग्रवाल हैं जो न केवल रक्षा वैज्ञानिक ही हैं वरन् भारत के लंबी दूरी के प्रक्षेपास्त्र अग्नि–II, अग्नि I आदि के जनक भी हैं।

इंजी. रामनारायण अग्रवाल का जन्म राजस्थान की राजधानी गुलाबी नगरी जयपुर के संभ्रान्त परिवार में 24 जुलाई 1941 को हुआ। उनकी स्नातक स्तर की शिक्षा जयपुर में हुई। आरंभ से ही वे मेधावी छात्र रहे तथा वर्ष 1960 में उन्होंने विज्ञान में स्नातक की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्राप्त की तथा इसी वर्ष वे वायुयान अभियांत्रिकी में शिक्षा प्राप्त करने हेतु मद्रास (चेन्नई) चले गए। उन्होंने इस संस्थान (चेन्नई, प्रौद्योगिकी संस्थान) से वैमानिक अभियांत्रिकी में डी.एम.आई.टी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। श्री अग्रवाल ने 1970 में देश के प्रतिष्ठित 'भारतीय विज्ञान संस्थान' बंगलौर से वैमानिक अभियांत्रिकी में एम.ई. की उपाधि प्राप्त की।

आपकी जीवन संगिनी श्रीमती रेणु अग्रवाल भी विद्युत एवं कम्प्यूटर अभियन्ता हैं जो वर्तमान में प्रतिरक्षा धातुर्विज्ञान अनुसंधान प्रयोगशाला, हैदराबाद में कार्यरत हैं। अग्रवाल दंपति वैज्ञानिक होते हुए भी दार्शनिक, ईश्वर भक्त तथा वेद विद्या के अनन्य प्रचारक हैं।

अभियांत्रिकी शिक्षा पूर्ण करने के उपरान्त श्री अग्रवाल ने दिसम्बर 1963 में रक्षा मंत्रालय में अनुसंधान फेलो के रूप में अपनी सेवाएँ आरंभ कीं तथा जून 1965 में वे वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी के पद पर पदोन्नत होकर हैदराबाद में प्रतिरक्षा अनुसंधान एवं विकास प्रयोगशाला में पदस्थापित हुए।

इंजी. अग्रवाल ध्वनि की गति से भी तेज हवाई तोप से हवा में मारक अस्त्रों, सम्पूर्ण प्रक्षेपास्त्र गिराने वाले जेट की जाँच सुविधा, पृथ्वी से आकाश तक मार करने वाले बहुस्तरीय प्रक्षेपणास्त्र प्रणालियों नामक उच्च गतिय वायुगति शस्त्र सुविधाओं के डिजाइन निर्माण एवं विकास से एक समूह–प्रमुख के रूप में संबद्ध रहे हैं।
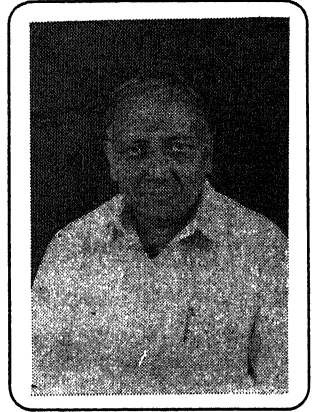
वर्ष 1982 में महामहिम डा. ए.पी.जे. कलाम ने रक्षा अनुसंधान विकास संस्थान के निदेशक का कार्यभार संभालने पर इंजी. अग्रवाल के परीक्षण कार्यों का अवलोकन किया तथा उससे बहुत प्रभावित हुए। लम्बी दूरी तक हवा में मार करने वाले प्रक्षेपणास्त्रों के लिए पुनः प्रवेश तकनीकी के स्थापन हेतु अग्नि प्रक्षेपास्त्र की रूपरेखा निर्माण, विकास और उड़ान की जाँच के लिए उन्हें जुलाई, 1983 में परियोजना निदेशक (अग्नि) का दायित्व सौंपा गया। इस प्रक्षेपणास्त्र की जाँच 22 मई 1989 को उड़ीसा राज्य में चन्दीपुर गाँव से प्रक्षेपण द्वारा की गई। इस प्रक्षेपण जाँच ने उद्देश्य की सम्पूर्ण आवश्यकताओं को पूरा किया तथा भारत को विश्व के हवा में मार करने वाले बाह्य प्रक्षेपणास्त्र देशों की शृंखला में खड़ा कर दिया। महामहिम डॉ. ए.पी.जे. कलाम ने सदैव इंजी. अग्रवाल के कार्यों की सराहना की।
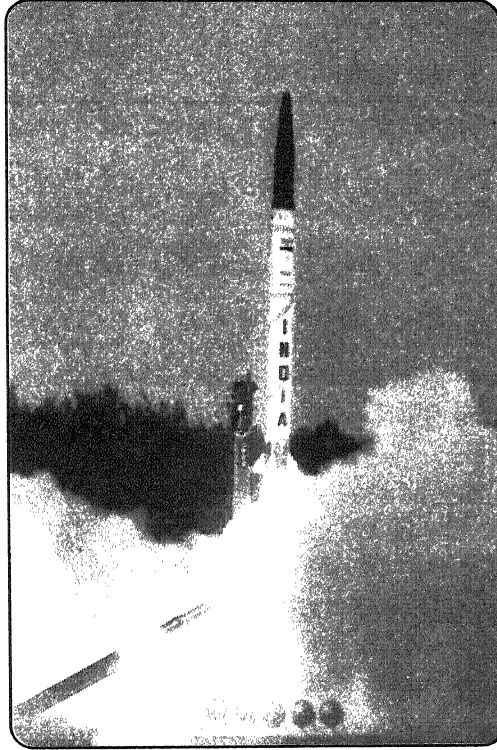
श्री अग्रवाल लम्बी दूरी के मिसाइल की रूपरेखा, निर्माण, विकास एवं प्रक्षेपण जाँच में कई दशकों से संलग्न हैं। उनकी देखरेख में कई वृहद् परियोजनाएँ चल रही हैं। इंजी. अग्रवाल के नेतृत्व में अग्नि–II एवं अग्नि–I का सफल परीक्षण भी किया गया। इस प्रकार उन्होंने लम्बी दूरी के मिसाइल निर्माण में देश को आत्मनिर्भर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आपके इस संबंध में 60 से अधिक तकनीकी पत्र/प्रतिवेदन भी प्रकाशित हुए हैं।

रक्षा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में लंबी दूरी के मिसाइल संबंधी कार्य करने में इंजी. आर.एन. अग्रवाल को महामहिम राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. कलाम, परमाणु ऊर्जा आयोग के पूर्व अध्यक्ष डॉ. आर. चिदम्बरम, भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन के अध्यक्ष डॉ. कस्तूरीरंगन, परमाणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष डॉ. काकोडकर, पूर्व सचिव, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग तथा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद के कुलपति प्रो. पी. रामाराव एवं विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केन्द्र के निदेशक श्री जी. माधवन जैसे शीर्षस्थ वैज्ञानिकों के साथ कार्य करने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इंजी. अग्रवाल को रक्षा प्रौद्योगिकी के विकास में अतिमहत्वपूर्ण कार्य करने के उपलक्ष्य में वर्ष 1989 में 'विज्ञान मणि' सम्मान प्रदान किया गया। भारत गणराज्य के राष्ट्रपति ने उन्हें वर्ष 1990 में 'पद्मश्री' अलंकरण से पुरस्कृत किया। वैज्ञानिक अनुसंधान क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करने हेतु 'एयरो सोसायटी ऑफ इंडिया' ने उन्हें 1990 में 'डॉ. बिरेन रॉय एयरो साइंस पुरस्कार' प्रदान किया। वर्ष 1993 में रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन ने उन्हें 'उत्कृष्ट वैज्ञानिक' पुरस्कार प्रदान किया। इसी प्रकार 1998 में उन्हें 'टेक्नोलाजी लीडरशिप अवार्ड' से सम्मानित किया गया। वर्ष 2000 में अग्नि II प्रक्षेपास्त्र के निर्माण में उत्कृष्ट योगदानों हेतु उन्हें महामहिम राष्ट्रपति द्वारा 'पद्मभूषण' अलंकरण प्रदान किया गया। राजस्थान सरकार द्वारा राजस्थान दिवस 1996 में इंजी. अग्रवाल को 'राजस्थानश्री' से सम्मानित किया गया। कांची कामकोटि के जगद्गुरु शंकराचार्य ने उनकी रक्षा प्रौद्योगिकी में

की गई उत्कृष्ट सेवाओं के लिए 'चन्द्रशेखर सरस्वती नेशनल इमीनेन्स अवार्ड 2000' से पुरस्कृत किया। इंजी. अग्रवाल अपने जीवन में सफलता का श्रेय डॉ. कलाम तथा अपनी धर्मपत्नी इंजी. (श्रीमती) रेणु अग्रवाल को देते हैं।

वे न केवल रक्षा वैज्ञानिक ही हैं वरन् बच्चों में वैदिक एवं परम्परागत शिक्षा का संचार करने वाले ट्रस्ट से भी जुड़े हुए हैं। इस ट्रस्ट के द्वारा उन्होंने कई बच्चों को शिक्षा प्रदान की है। वे पुरातन मंदिरों के रखरखाव एवं धरोहर रक्षा संबंधी संस्था से भी जुड़े हुए हैं। वे एक सच्चे वैज्ञानिक, सहृदय, ईश्वरभक्त एवं महामानव हैं तथा सदैव बच्चों की सहायता करने में तत्पर रहते हैं।

वर्तमान में इंजी. आर.एन. अग्रवाल हैदराबाद स्थित रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन की महत्वपूर्ण एडवान्स सिस्टम लेबोरेट्री (ASL) के निदेशक के पद पर कार्यरत हैं। उनके नेतृत्व में देश में रक्षा प्रौद्योगिकी का भविष्य उज्ज्वल है।

प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग
जोधपुर शाखा

पाठक मंच

सम्पादक जी 'विज्ञान'
इलाहाबाद

1. आपकी पत्रिका का स्वरूप बहुत अच्छा हो चुका है किन्ते इसमें भारतीय ज्ञान के लिए कुछ विशेष नहीं आ पा रहा है जैसे अरबों वर्ष पूर्व पृथ्वी के अव्यक्त से व्यक्त होने में जो परमाणु पदार्थ लगे उन सबका सम्पूर्ण ज्ञान निघन्टु 1/1 के 21 पद या परमाणु पदार्थों में व्यक्त नहीं किया गया ? इन सभी परमाणु पदार्थों के समस्त वेद स्थलों को चतुर्वेद व्याकरण पद सूची के माध्यम से बड़ी सहजता से प्राप्त किया जा सकता है।

2. पृथ्वी की रचना के समय जब पृथ्वी ठंडी हुई तो उसमें परत दर परत खदानों के रूप में व्यक्त होने वाले समस्त पदार्थों का ज्ञान क्या निघन्टु 1/2 में दिए हुए 15 पदार्थों से प्राप्त नहीं हो पाएगा ?

3. अन्तरिक्ष की 16 तथा 6 साधारण कक्षाओं का ज्ञान निघन्टु 1/3,4 में दिए हुए पदों के सभी वेद स्थलों को ढूँढने से क्या सम्पूर्ण ज्ञान भारतीयों को प्राप्त नहीं हो सकता है ?

4. यास्क निघन्टु 1/5 में राशियों के 15 भेद किए गए हैं माधवानुक्रमणिका के नामानुक्रमणि भाग में श्लोक सं. 641 से 658 तक में 101 रश्मियों को संकलित किया गया है। निघन्टु 118 में उषा के 16 भेद किए गए हैं। निघन्टु 1/9 में प्रकाश के 12 भेद किए गए हैं। निघन्टु 1/10 में वर्षा के रूप में बनने वाले परमाणु के 30 भेद किए गए हैं। क्या इस चतुर्वेद व्याकरण पद सूचियों के माध्यम से ऋषि, देवता, इन्द्रों का ज्ञान करके क्या विद्या के क्षेत्र में भारत को अग्रणी नहीं बनाया जा सकता है।

5. निघन्टु 1/11 में वाणी के 57 भेद किए गए हैं। निघन्टु 1/12 में जलों के बनने से पूर्व के जलों के 101 भेदों को एकत्रित किया गया है। क्या इससे भारत के विद्वान एवं वैज्ञानिक संसार के वैज्ञानिकों की सर्वश्रेष्ठ पंक्ति में बैठने के योग्य नहीं हो जायेंगे ?

6. निघन्टु 1/13 में नदी की तरह प्रवहमान में 37 परमाणु पदार्थों को एक सूत्र में पिरोया गया है। निघन्टु 1/14 में 26 ऐसे परमाणुओं को एकत्रित किया गया है जो अश्व की तरह वाहनों को चलाने की क्षमता रखते हैं। इस अदम्य ज्ञान को आप लोग आलोकित क्यों नहीं कर पा रहे हैं बड़े आश्चर्य का विषय है। ऊर्जा हेतु हमारे वेदों में भिन्न–भिन्न ऋषि देवता छन्दों के माध्यम से प्रकाश डाला गया है उसकी एक छाया प्रति संलग्न की जा रही है।

कृपया हृदय के अपने विचार भेजने की कृपा करें।

छैलबिहारी लाल गोयल
वेद विद्या अनुसंधानरत
बारहद्वारी, पसरट्टा बाजार, हाथरस–204101

राष्ट्रीय कार्यशाला : कृषि, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के नये आयाम

डॉ० उमा शंकर मिश्र

'कृषि, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के नये आयाम' विषय पर दो दिवसीय राष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन 26 अप्रैल तथा 27 अप्रैल 2003 को महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय के अमर्त्यसेन सभागार में हुआ। कार्यशाला वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली द्वारा प्रायोजित की गई। इसे विज्ञान परिषद् प्रयाग– शाखा चित्रकूट तथा कृषि एवं पशु विज्ञान संकाय के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित किया गया।

कार्यशाला का उद्घाटन सुप्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक, प्रधानमंत्री विज्ञान परिषद् प्रयाग और मुख्य अतिथि प्रो0 शिवगोपाल मिश्र के कर कमलों द्वारा किया गया। ग्रामोदय विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो0 टी. करुणाकरण ने उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता की। राष्ट्रीय कार्यशाला संयोजक डॉ0 उमाशंकर मिश्र ने कार्यशाला के उद्देश्य और उसकी रूपरेखा प्रस्तुत की। आचार्य नरेन्द्र देव कृषि विश्वविद्यालय फैजाबाद के पूर्व कुलपति प्रो0 बी.आर. त्रिपाठी, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार के अध्यक्ष डॉ0 हरीश कुमार, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना, बिहार के निदेशक डॉ0 अमर कुमार सिंह, केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, आई.सी.ए.आर. लखनऊ के निदेशक डॉ0 राम कृपाल पाठक, दीनदयाल शोध संस्थान के प्रधान सचिव भरत पाठक आदि विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित थे। पाँच सत्रों में विभक्त इस कार्यशाला में कृषि एवं पशु विज्ञान में स्वरोजगार की सम्भावनाएँ, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के नये आयाम, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का स्वरोजगार में योगदान, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दार्शनिक, राजनैतिक एवं साहित्यिक चिंतन के विविध आयाम एवं उनकी उपादेयता और बदलते आर्थिक परिवेश में उद्यमिता विकास की चुनौतियाँ विषय को लेकर गहन विचार एवं चिन्तन किया गया।

उद्घाटन सत्र को संबोधित करते हुए आचार्य नरेन्द्र देव कृषि विश्वविद्यालय फैजाबाद के पूर्व कुलपति प्रो0 बी.आर. त्रिपाठी ने कहा कि समस्या का निदान ही तकनीक है। उन्होंने संत कवि तुलसीदास की उक्ति 'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा, को आज भी उपयुक्त बताया। उन्होंने कहा कि वाटर शेड के आधार पर भूमि क्षरण को रोकना चाहिए।

ग्रामोदय विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो0 टी. करुणाकरण ने कहा कि कृषि, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को अगर जन जन तक पहुँचाना है तो लोगों की भाषा में ज्ञान को संप्रेषित करना होगा तभी इच्छित फल मिल पाएगा। इस दिशा में तकनीकी शब्दावली आयोग की भूमिका महत्वपूर्ण है।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के अध्यक्ष डॉ0 हरीश कुमार ने कहा कि समस्त विषयों पर तकनीकी शब्दों का सृजन आयोग द्वारा किया जा रहा है। उन्होंने हिन्दी सहित अन्य भारतीय भाषाओं के
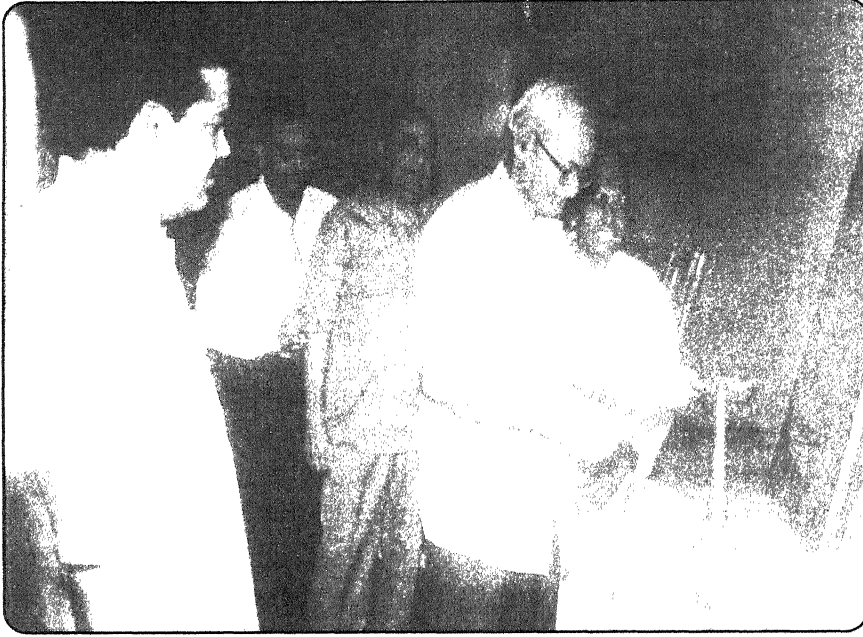
कार्यशाला का उद्घाटन करते हुए डॉ0 शिवगोपाल मिश्र साथ में डॉ0 उमाशंकर मिश्र, डॉ0 रामकृष्ण मिश्र, डॉ0 हरीश कुमार तथा डॉ0 टी. करूणाकरण

विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रधानमंत्री और सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो0 शिवगोपाल मिश्र ने लेखन की आवश्यकता पर बल देते हुए वैज्ञानिकों का आह्वान किया कि वे लोगों में जागरूकता लाने वाले लेख, शोधपत्र ऐसी सामंजस्य पूर्ण ढंग से किये जाने की आवश्यकता बताई तथा विज्ञान परिषद् चित्रकूट शाखा के प्रधानमंत्री डॉ0 उमाशंकर मिश्र के निवेदन पर 'शब्दावली क्लब' की स्थापना की घोषणा की। साथ ही डॉ0 उमाशंकर मिश्र द्वारा लिखी गई पुस्तक 'प्राकृतिक खेती' को अपने आयोग द्वारा प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की।
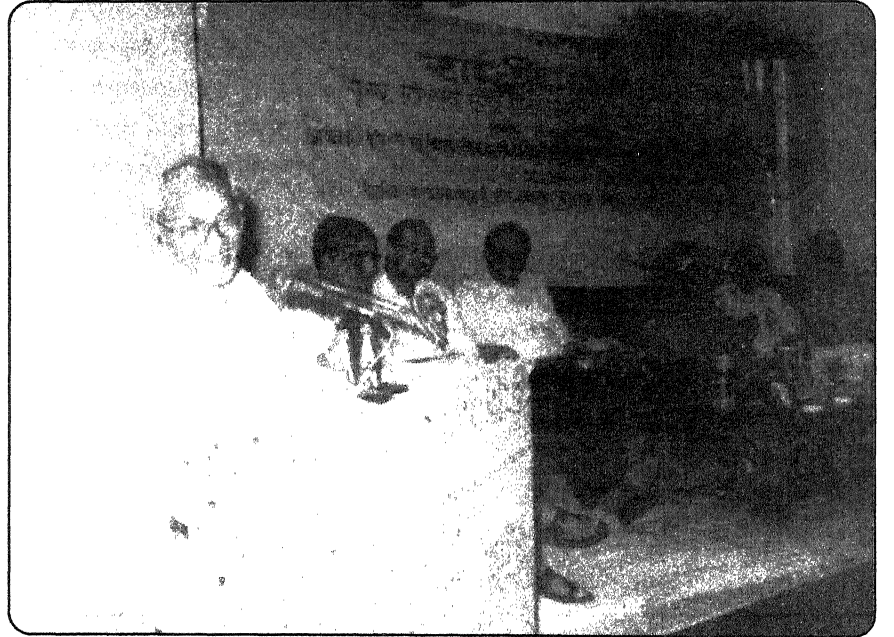
कार्यशाला में उद्घाटन भाषण करते हुए डॉ0 शिवगोपाल मिश्र

कार्यशाला को सम्बोधित करते हुए ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट के कुलपति डॉ० टी. करुणाकरण

में कार्यरत है।

ग्रामोदय विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० टी. करुणाकरण ने आयोग के अध्यक्ष डॉ० हरीश भाषा में लिखें जो सामान्य जनमानस को सुगम ढंग से ग्राह्य हो।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के कार्यशाला निदेशक डॉ० आर.के. मिश्र ने आयोग के कार्यों पर प्रकाश डाला।

दीनदयाल शोध संस्थान के प्रधान सचिव भरत पाठक ने कहा कि ग्रामोदय विश्वविद्यालय अपने प्रारम्भिक काल से ही विभिन्न भाषाओं के द्वारा ज्ञान को बढ़ावा देने की दिशा

कुमार और कार्यशाला के संयोजक डॉ० उमाशंकर मिश्र ने सुप्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक प्रो० शिवगोपाल मिश्र का शाल–श्रीफल के द्वारा सार्वजनिक अभिनन्दन किया।

कार्याशाला के प्रथम सत्र की अध्यक्षता आचार्य नरेन्द्र देव कृषि विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो० वी.

अतिथियों का स्वागत करते हुए कार्यशाला संयोजक डॉ० उमाशंकर मिश्र

आर. त्रिपाठी ने की। इस सत्र में केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान आई.सी.ए.आर. लखनऊ के निदेशक प्रो0 आर.के. पाठक ने बुन्देलखंड प्रक्षेत्र में जैविक आँवला पर अपने विचार व्यक्त किए। डॉ0 डी.डी. ओझा (जोधपुर) ने रासायनिक उर्वरकों के दुष्प्रभाव पर प्रकाश डाला। प्रो0 गिरीश पाण्डे (फैजाबाद) ने कार्बनिक खेती पर अपने विचार व्यक्त किए।

द्वितीय सत्र की अध्यक्षता प्रो0 गिरीश पाण्डे ने की जिसमें कई वैज्ञानिकों ने अपने विचार व्यक्त किए। डॉ0 एस.आर.जे. सिंह (कृषि महाविद्यालय रीवां), इ0 मुन्ना सिंह (गोवा), प्रो0 वी.एन. सिंह (अधिष्ठाता कृषि महाविद्यालय ग्वालियर), डॉ0 देवमणि मिश्र (मुम्बई), डॉ0 रमेश पाण्डे (इलाहाबाद), डॉ0 उदयराज (इलाहाबाद), डॉ0 अनिल कुमार मिश्र (जयपुर), डॉ0 एस.एन. शुक्ल (जबलपुर), डॉ0 ए.पी. सिंह (वाराणसी), श्री गया प्रसाद शर्मा (इलाहाबाद)।

कार्यशाला के दूसरे दिन तृतीय सत्र की अध्यक्षता प्रो0 वी.एन. सिंह, अधिष्ठाता कृषि महाविद्यालय ग्वालियर ने की जिसमें कई वैज्ञानिकों ने अपने विचार व्यक्त किए– डॉ0 वी.के. सीरिया (उज्जैन), प्रो0 वी. आर. द्वारिकी (चित्रकूट), डॉ0 जटाशंकर उपाचार्य (इलाहाबाद विश्वविद्यालय), डॉ0 राजेन्द्र गौतम (दिल्ली), डॉ0 राजेन्द्र पाण्डे (दिल्ली), डॉ0 सी.पी. श्रीवास्तव (लखनऊ)।

चतुर्थ सत्र की अध्यक्षता वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ0 अनिल कुमार मिश्र जयपुर ने की। कु0 हेमलता पन्त (इलाहाबाद), डॉ0 शशिकान्त त्रिपाठी (चित्रकूट), डॉ0 रवीन्द्र सिंह (चित्रकूट), डॉ0 वरुण कुमार सिंह (कृषि महाविद्यालय हमीरपुर), डॉ0 सी.पी. गूजर (चित्रकूट), डॉ0 विक्रमा पाण्डे (फैजाबाद), प्रो0 पी.एन. त्रिपाठी (फैजाबाद), महेश तिवारी (चित्रकूट), डॉ0 विपिन ब्यौहार (जबलपुर), डॉ0 प्रभा ब्यौहार (जबलपुर), डॉ0 रजनी शर्मा (जबलपुर), डॉ0 ए.के. खरे (पन्ना, मध्य प्रदेश), हरि किशन सिंह (चित्रकूट), डॉ0 रमेश चन्द्र त्रिपाठी (चित्रकूट) डॉ0 सुनील पाण्डे (बस्ती), डॉ0 प्रभाकर द्विवेदी (इलाहाबाद), श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव (इलाहाबाद), देवव्रत द्विवेदी (इलाहाबाद) आदि वैज्ञानिकों ने भाग लिया तथा समापन सत्र की अध्यक्षता प्रो0 बी. आर. द्वारिकी, अधिष्ठाता प्रबन्धन संकाय ग्रामोदय विश्वविद्यालय ने की एवं सुप्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक प्रो0 शिवगोपाल मिश्र के आतिथ्य में सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम का संचालन डॉ0 जितेन्द्र शर्मा ने किया तथा डॉ0 पवन सिरौठिया द्वारा धन्यवाद ज्ञापन के साथ दो दिवसीय कार्यशाला सम्पन्न हुई।

इस कार्यशाला में स्थानीय एवं देश के कोने कोने से आये 400 से अधिक प्रतिभागियों ने सक्रिय भागीदारी की। ग्रामीण अंचल में यह पहली सफल कार्यशाला कही जा सकती है।

प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद, चित्रकूट शाखा

'हिन्दी विज्ञान लेखन के सौ वर्ष' का द्वितीय खण्ड प्रकाशित

विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली ने डॉ0 शिवगोपाल मिश्र द्वारा सम्पादित पुस्तक 'हिन्दी विज्ञान लेखन के सौ वर्ष' का दूसरा खण्ड भी प्रकाशित कर दिया है। इस खण्ड में 1850 से 1950 की अवधि में विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित जीवनोपयोगी विज्ञान विषयक लेखों का संकलन है जो विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा शोध के बाद प्राप्त 3800 लेखों में से चुने गये हैं।

यह पुस्तक निम्न पते पर क्रय की जा सकती है–

विज्ञान प्रसार
सी–24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया
कुतुब होटल के पीछे
नई दिल्ली–110016

'विज्ञान प्रौद्योगिकी विश्वकोश' के निर्माण हेतु कार्यशाला सम्पन्न

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा इलाहाबाद में 12 मई 2003 से 22 मई 2003 तक ग्यारह दिवसीय कार्यशाला का आयोजन हिन्दी में **'विज्ञान प्रौद्योगिकी विश्वकोश'** के प्रथम खण्ड के निर्माण हेतु किया गया। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग नई दिल्ली ने इस विश्वकोश के निर्माण की जिम्मेवारी विज्ञान परिषद् प्रयाग को सौंपी है। प्रथम खण्ड में A, B, C इन तीन अक्षरों से आरम्भ होने वाले शब्दों की जानकारी दी जाएगी जो विज्ञान की सभी शाखाओं से सम्बद्ध हैं।

इस कार्यशाला का उद्‌घाटन करते हुए लोक सेवा आयोग उत्तर प्रदेश के अध्यक्ष प्रो0 कृष्ण बिहारी पाण्डेय ने कहा कि आज विज्ञान का विद्यार्थी अंग्रेजी के पीछे इसलिए भागता है कि उसे उसकी राष्ट्रभाषा हिन्दी में विज्ञान विषयक समग्र साहित्य उपलब्ध नहीं है। **विज्ञान प्रौद्योगिकी विश्वकोश** इस अभाव को दूर करने की दिशा में एक नवीन प्रयास होगा। हिन्दी में वैज्ञानिक विश्वकोश का कोई माडल न होने के कारण यह विश्वकोश आने वाले समय में मानक का कार्य करेगा।

विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रधानमंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र ने जो इस कार्यशाला के समन्वयक भी थे सभी उपस्थित विद्वानों को कार्यशाला के उद्‌देश्य और सम्पन्न किये जाने वाले कार्य की रूपरेखा से परिचित कराया।

इस ग्यारह दिवसीय कार्यशाला में इलाहाबाद और वाराणसी के विज्ञान, कृषि तथा चिकित्सा प्रौद्योगिकी के विद्वानों ने लगभग 1100 शब्दों की विश्वकोश हेतु प्रविष्टियाँ लिखकर तैयार कीं। ये प्रविष्टियाँ भौतिकी, रसायन, वनस्पति विज्ञान, जीव विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, सूचना प्रौद्योगिकी, जैव प्रौद्योगिकी, यांत्रिक इंजीनियरी, सिविल इंजीनियरी, भूगर्भ, मृदा विज्ञान, पुरावनस्पति विज्ञान, कृषि विज्ञान आदि विषयों से संबंधित हैं।

कार्यशाला के समापन के अवसर पर वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली आयोग के वैज्ञानिक अधिकारी डॉ0 रामकृष्ण मिश्र ने कार्यशाला की उपलब्धियों पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि विज्ञान परिषद् इस ऐतिहासिक महत्व की परियोजना को मूर्त रूप देने में सक्षम है और शीघ्र ही यह विश्वकोश प्रकाशित होगा।

इस कार्यशाला में डॉ0 शिवगोपाल मिश्र, डॉ0 के.के. भूटानी, डॉ0 प्रभाकर द्विवेदी, डॉ0 आर.सी. गुप्ता, डॉ0 अनिल गुप्ता, श्री प्रेमचंद्र श्रीवास्त्व, डॉ0 राजेश्वर प्रसाद, डॉ0 विमलेश चंद्र श्रीवास्तव, डॉ0 अशोक कुमार गुप्ता, डॉ0 श्रवण कुमार तिवारी (वाराणसी), डॉ0 सुख महेन्दर सिंह (वाराणसी), डॉ0 अंजना पाण्डेय, डॉ0 के. एन. उत्तम, देवव्रत द्विवेदी, डॉ0 देवेन्द्र कुमार चौहान, उमेश कुमार शुक्ल, एम.पी. यादव, नीलेश कुमार जैन, डॉ0 श्री वल्लभ मिश्र, डॉ0 विनोद कुमार ललोरिया, श्री वी.के. बिंदल, श्री के.के. पाण्डेय, श्री वी.सी. अग्रवाल और डॉ0 गिरजेश कुमार ने सक्रिय भाग लिया।

देवव्रत द्विवेदी

विज्ञान परिषद् जोधपुर शाखा की गतिविधियाँ

विद्यार्थियों में जल चेतना जरूरी

जोधपुर। विज्ञान परिषद् प्रयाग की जोधपुर शाखा एवं गीतांजलि सेकेण्डरी विद्यालय जोधपुर के संयुक्त तत्वावधान में जल संरक्षण कार्यक्रम 10 अप्रैल को आयोजित हुआ जिसमें विद्यालय के 150 छात्र छात्राओं ने भाग लिया तथा जल संरक्षण संबंधी पोस्टर तैयार किए एवं जल विषयक स्लोगन भी बनाये। इस कार्यक्रम में मुख्य वक्ता के रूप में जोधपुर शाखा के प्रधानमंत्री एवं भूजल विभाग के वैज्ञानिक डॉ0 डी.डी. ओझा ने छात्र छात्राओं को संबोधित करते हुए बताया कि पृथ्वी पर जल की 146 करोड़ घन किलोमीटर मात्रा होते हुए मानव के लिए मात्र इसका एक प्रतिशत भाग ही पीने योग्य है। मानवीय जल दोहन की विभिन्न क्रियाओं को बड़े ही रोचक ढंग से बताते हुए डॉ0 ओझा ने बताया कि देश में प्रतिवर्ष भूजल स्तर 1 से 3 मीटर नीचे जा रहा है तथा अपर्याप्त वर्षा के कारण इसका पुनर्भरण नहीं होने से बड़ी विकट समस्या उत्पन्न हो चुकी है। ऐसी विषम स्थिति जल की एक–एक बूंद बचाना हम सभी का नैतिक कर्तव्य है। डॉ0 ओझा ने बड़े ही सरल तरीकों द्वारा दैनिक जीवन क्रियाओं में जल संरक्षण की विधियों को बताया कि प्रत्येक छात्र का जल संरक्षण में बहुत योगदान होता है। अतः विद्यार्थियों को जल संरक्षण का संकल्प लेना चाहिए। विज्ञान परिषद् जोधपुर शाखा के सभापति इंजी. के. एम.एल. माथुर ने राजस्थान की पुरातन जल संग्रहण पद्धतियों के बारे में प्रकाश डाला तथा आजके परिप्रेक्ष्य में उनके महत्व पर भी जानकारी दी। उन्होंने पोस्टर विजेताओं को परिषद् की शाखा की ओर से स्मृति चिन्ह प्रदान किए। कार्यक्रम के अंत में प्राचार्या डॉ0 सुमन जोशी ने जोधपुर शाखा का आभार व्यक्त किया तथा कार्यक्रम का संचालन डॉ0 उषा दवे ने किया।

कार्यक्रम को संबोधित करते डॉ. डी.डी. ओझा,
साथ में डॉ. सुमन जोशी तथा इंजीनियर के.एम.एल. माथुर

— डॉ. डी.डी. ओझा
प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग
जोधपुर शाखा

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से :

1. रचनाएँ टंकित रूप में या सुलेख रूप में कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जाएँ।
2. रचनाएँ मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जाएँ तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न–स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझाव का स्वागत है।

प्रकाशकों से :

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जाएगी।

विज्ञापनदाताओं से :

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन दरें निम्नवत् हैं :
भीतरी पृष्ठ पूरा 1000 रु0, आधा पृष्ठ 500 रु0, चौथाई पृष्ठ 250 रु0
आवरण द्वितीय तथा तृतीय 2500 रु0, आवरण चतुर्थ 4000 रु0

भेजने का पता :

प्रधानमंत्री

विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद
फोन नं0 : (0532) 2460001